द्वारका का राजा

[तीन अंकी नाटक]

लेखक

नाना वरेरकर

अनुवादक

रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे

लोक-चेतना-प्रकाशन, जबलपुर

प्रथम संस्करण : १४ नवम्बर, १९५८
१०००

मूल्य
२·५० रुपये

आवरण
एम० इस्माइल

मुद्रक
केसरवानी प्रेस, इलाहाबाद

प्रस्तावना

प्रचलित पौराणिक कथाओं और पुराणों की अधिकृत कथाओं में अन्तर दिखायी देता है। इन प्रचलित कथाओं ने अपनी जड़ें इतनी पक्की जमा ली हैं कि जिससे सच्ची मूल कथा में जो विकृति आ गयी है, वह बड़े-बड़े विद्वानों के भी ध्यान में नहीं आती। राम और कृष्ण की जीवनी-सम्बन्धी कथाओं में कुछ इसी प्रकार हो गया है।

श्रीकृष्ण के तत्त्वज्ञान के बारे में बड़े-बड़े पंडितों में भी मतभेद है। जिस श्रीकृष्ण से यह उपदेश कराया गया है कि "अर्जुन, उठ। यश प्राप्त कर। लड़ाई के लिए प्रवृत्त हो जा और शत्रु पर विजय प्राप्त करके समृद्धशाली राज्य का उपभोग कर।" उसी कृष्ण की अपनी निजी भूमिका युद्ध-विरोधी हो, यह कैसे मानें? परन्तु सच यही है। मथुरा की राजनीति से कृष्ण का जो सम्बन्ध रहा है, उसे यदि देखें तो अपमान ही नहीं, बल्कि कभी-कभी अप्रतिष्ठा को स्वीकार करके भी उन्होंने युद्ध टालने के प्रयत्न किये हैं। आगे चलकर पांडवों की राजनीति में भी पद-पद पर उन्होंने युद्ध टालने का उपदेश दिया है। यही नहीं, कौरवों की सभा में जाकर पांडवों के लिए पाँच गाँवों की अत्यन्त करुण मांग की उन्होंने जो वकालत की, वह युद्ध-विरोधक नहीं, ऐसा कौन कहेगा? महाभारत के उस युद्ध में उन्होंने सारथी का काम किया और शस्त्र ग्रहण नहीं किये, सो अपनी इसी टेक को निभाने के लिए।

'हरिवंश' और 'महाभारत' दोनों ग्रंथों में श्रीकृष्ण की युद्ध-विरोधी शान्तिदूत की, जो यह भूमिका दिखायी देती है, उसे कथा और नाट्य साहित्य में जितना उभार प्राप्त होना चाहिए, उतना प्राप्त हुआ दिखायी नहीं देता। और यही कारण है कि जब-जब युद्ध के लिए प्रवृत्त होने का प्रसंग आता है, तब-तब श्रीकृष्ण के उपदेश का जो आधार लिया जाता है, वह उस महान् शान्तिदूत के चरित्र को कलंकित कर देता है।

प्रस्तुत नाटक का आरम्भ यद्यपि रुक्मिणी स्वयंवर से हुआ है फिर भी नाटक की कथावस्तु उस स्वयंवर पर आधारित नहीं है, वरन श्रीकृष्ण और जरासंध इन दो महान राजनीतिज्ञों के राजनैतिक द्वन्द्व पर आधारित है। 'हरिवंश' में ऐसा उल्लेख है कि कालयवन बर्बर देश की राजकन्या से उत्पन्न गर्गाचार्य का पुत्र है। मूल 'हरिवंश' में यह कथा है कि सोये हुए मुचकुन्द ऋषि को लात मारने के कारण उस ऋषि के नेत्रों से निकली अग्नि-ज्वाला में कालयवन भस्म हो गया। नाटककार की परम्परा के अनुरूप इस घटना को जो भिन्न स्वरूप दिया गया है, उसके कारण जिस प्रकार गर्गाचार्य की भूमिका को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है, उसी प्रकार उसने नाट्यपूर्ण प्रसंग में नवीनता भी उत्पन्न कर दी है।

इस नाटक का अभिनय सहकारी मनोरंजक मण्डल नामक संस्था ने दिनांक २३ नम्बर १९५६ को बम्बई के दामोदर हाल में किया था। आज जब कि प्रस्तुत नाटक का हिन्दी अनुवाद हो रहा है, संसार की राजनीति में जिस परिमाण में युद्ध-विरोध का उपदेश दिया जा रहा है, उसी परिमाण में शान्ति-दूत की भूमिका विध्वंसक शक्ति से झगड़ रही है। इस नाटक के द्वारा हिन्दी भाषा-भाषियों को यदि यह मालूम हो जाय कि भारत ने विश्व-शान्ति की स्थापना के

लिए जो अग्र स्थान स्वीकार किया है, उसे श्रीकृष्ण का आधार प्राप्त है; तो एक बड़ा भारी काम हो गया, ऐसा मैं समझूँगा। अनुवाद निर्दोष हो, इसलिए इसके अनुवाद का कार्य-भार मैंने श्री० रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे को सौंपा और उन्होंने उसे ठीक से निभाया, यह पाठक देखेंगे ही।

जिस समय यह नाटक प्रकाशित हो, ऐसी मेरी इच्छा थी, उसी समय इसे प्रकाशित करने के लिए जबलपुर के लोकचेतना प्रकाशन के संचालक तथा सुप्रसिद्ध हिन्दी-साहित्यकार श्री नर्मदाप्रसाद जी खरे ने जो उत्सुकता दिखायी, और जिस उत्साह से उन्होंने यह पुस्तक इतने सुन्दर स्वरूप में और इतनी जल्दी प्रकाशित की, इसके लिए मैं उनका सहर्ष अभिनन्दन करता हूँ।

जबलपुर,
२३ सितम्बर, १९५८ — *मामा वरेरकर*



पंडित नेहरू के साथ मामा वरेरकर

जो

आज के भारत में

भगवान् श्रीकृष्ण के जीवन-

आदर्शों को चरितार्थ कर,

अपने प्राणों की बाजी लगा कर

विश्व को पंचशील का महान सन्देश

दे रहे हैं, ऐसे पंडित जवाहरलाल

नेहरू के पुनीत कर-कमलों में सादर समर्पित ।

दिल्ली,
१४ नवम्बर, १९५८ } **मामा वरेरकर**

पहला अंक

पहला दृश्य

[बलराम का अन्तःपुर। बलराम और रेवती अपने-अपने आसन पर विराजमान हैं। बाहर से चारणों का वैतालीय सुनाई पड़ रहा है। वैतालीय के समाप्त होते ही दोनों प्रणाम करते हैं।]

बलराम : *कृष्ण कहाँ चल दिया? हजार बार कहा, फिर भी उसके कान पर जूँ नहीं रेंगती—अपनी आदत से बाज नहीं आता। सायंकाल, शुभाशीर्वाद के समय उसे यहाँ उपस्थित रहना चाहिए, यह वह कैसे भूल जाता है? अवज्ञा की आदत ही पड़ गयी है उसे!*

रेवती : *नहीं, ऐसी बात नहीं है। हम यह कैसे कह सकते हैं कि वे वहीं न गए हों? शायद वे सास जी के ही पास हों इस समय। कुछ समय पहले उन्हें उसी ओर जाते हुए मैंने देखा था। शुभाशीर्वाद के समय किसी बड़े के समक्ष ही होना चाहिए न उन्हें!*

बलराम : *मैं यह इसलिए नहीं कहता कि बड़े होने के नाते मैं उस पर अपनी धाक जमाऊँ। परन्तु उसने तो जैसे कसम ही खाली है, कि जो मैं कहूँ, वह कभी नहीं सुनेगा। और फिर वह सुनता भी किस की है? अपनी बुद्धि का बड़ा अभिमान जो है न उसे? जो कुछ करना है बड़ों से पूछकर करना चाहिए। लेकिन*

हर बात मुझ से ही पूछना चाहिए, यह मैं नहीं कहता ।

रेवती : तो वे वहीं पूछ रहे होंगे। शायद भोज राज से पूछते हों, ससुर जी से पूछते हों या कि सास जी से पूछते हों···

बलराम : लेकिन पूछना नहीं है केवल मुझ से। क्यों, यही न ? तुम भी अभी से उसका पक्ष लेने लगीं ?

रेवती : अभी से का क्या अर्थ ?

बलराम : अपना विवाह हुए, अभी दिन ही कितने हुए हैं; फिर भी कितने जल्दी उसने अपना सिक्का जमा लिया तुम पर ! यही तो बड़ी खूबी है उसकी। मैं हूँ ऊबड़-खाबड़ आदमी। मेरा स्वभाव ही ऐसा है। जो कहना होता है, सीधा और साफ-साफ कह देता हूँ।इसीलिए मेरी किसी से नहीं पटती···

रेवती : और क्या लाला की पटती है ?

बलराम : हाँ, हाँ, कृष्ण की पटती है—सब से पटती है—वह सभी को झुलाता रहता है। दाँव-पेंच भिड़ाने में बड़ा कुशल है वह। सब से मुँह-चुपड़ी बातें करना, सब का कृपा-पात्र बनना, सब की हाँ में हाँ मिलाना, और अंत में करना अपने मन का ही ! भई, ऐसी चालबाजी मुझे नहीं आती। आखिर गया भी कहाँ है वह ? कौन है रे उधर ? (सेवक आता है।) कृष्ण से जाकर कहो कि मैंने उसे इसी समय याद किया है। (सेवक जाता है।) अब तुम स्वयं ही देख लेना। पहले तो वह आएगा ही नहीं। और

यदि आ गया तो अपनी बातों में ऐसी मिश्री घोलेगा कि मेरा सारा क्रोध अपने-आप उतर जायगा।

रेवती : (हँसकर) ऐसा होता है न ?

बलराम : होता है—यही तो हो जाता है, और इसीलिए मुझे उस पर क्रोध आता है ।

रेवती : क्या क्रोध सचमुच आता है ?

बलराम : यह कैसा प्रश्न ? कह तो दिया कि आता है। ऐसा क्रोध आता है उस पर—(कृष्ण प्रवेश करता है।) आ गये आप !

कृष्ण : यहीं तो आ रहा था मैं।

बलराम : (रेवती से) लो, सुन लो अब। कहता है कि यहीं आ रहा था !

कृष्ण : तो फिर इतने शीघ्र कैसे आ जाता ? यहीं द्वार पर ही तो मुझे आप का समाचार मिला। वरना वह बेचारा कहाँ खोजता रहता मुझे ?

बलराम : कहाँ गया था ? बैठ जा वहाँ ? इस समय यहाँ उपस्थित न रह कर कहाँ चल दिया था ? किस के पीछे ?

कृष्ण : भाभी, अब आप ही सुनिए। क्या इस तरह पूछना कोई अच्छी बात है ?

बलराम : मैंने ऐसा कौन-सा बुरा प्रश्न कर डाला ?

कृष्ण : अब आप ही सोच लें ! 'किस के पीछे' का क्या मतलब होता है, दादा !

रेवती : *इस प्रकार व्यंग करना उचित नहीं।*

बलराम : *इसमें मैंने व्यंग से क्या कहा है ?*

कृष्ण : *क्या आप सोचते हैं कि मैं सदा किसी के पीछे ही घूमता रहता हूँ ?*

बलराम : *मैं बाल की खाल निकालना नहीं जानता। मैंने केवल यह पूछा कि—कहाँ गया था, किसके यहाँ गया था ?*

कृष्ण : *और—'किसके पीछे' ?*

बलराम : *हाँ-हाँ, किस के पीछे ? तेरी आदत ही है वह। आज से नहीं—गोकुल में रहता था तब से। क्या कह दूँ तेरी भाभी से सब कुछ ?*

रेवती : *गोकुल की बातें मुझ से कहने की जरूरत नहीं। उन्हें सभी जानते हैं···*

बलराम : *ले, सुन अब। गोकुल से रैवत देश कितनी दूर है ? लेकिन तेरी कीर्ति के डंके की आवाज वहाँ तक भी पहुँच चुकी है।*

कृष्ण : *लेकिन मुझे बुलाया क्यों गया है ?*

बलराम : *अरे, हाँ सच ! मैंने तुझे क्यों बुलाया था ?* (रेवती से) *मैंने इसे क्यों बुलाया था जी ?*

रेवती : *मैं क्या जानूँ ? मुझे आपने बताया ही कहाँ था ?*

बलराम : *क्या मैंने तुमसे नहीं कहा ? देखो, ऐसा हो जाता है मुझे ! किस लिए बुलाया था मैंने इसे ?*

रेवती : *आप जरासंध की कोई बात कह रहे थे···*

बलराम : हाँ, जरासंध की ही बात है। अब याद आया। जरासंध की ही बात निकली थी···

कृष्ण : अब जरासंध यहाँ आने का नाम नहीं लेगा। उसे काफी मार लग चुकी है। इक्कीस अक्षौहिणी सेना लेकर आया था और अपनी सेना पर बड़ा गर्व था उसे। लेकिन अंत में सिर पर पैर रख कर सारी सेना के साथ भागना ही पड़ा बेटे को!

बलराम : यहाँ आने की बात नहीं है जी—जरासंध ने अब एक नयी झंझट खड़ी कर दी है। वह तो येन-केन प्रकारेण हमसे बदला लेना चाहता है—हमारा अपमान करना चाहता है। कुंडिनपुर के राजा भीष्मक के पुत्र रुक्मी को उसने अपने हाथ की कठपुतली बना लिया है। भीष्मक से हमारी बहुत पहले से ही बड़ी घनिष्ठता है लेकिन रुक्मी के आगे उसके पिता की कुछ नहीं चलती। रुक्मी बड़ा उद्दंड है—वह अपने बाप को कुछ समझता ही नहीं! इसीलिए जरासंध रुक्मी को अपने हाथ का खिलौना बनाकर उसकी बहिन रुक्मिणी का स्वयंवर रचाना चाहता है।

कृष्ण : तो इसमें हमारे अपमान का प्रश्न ही कहाँ उठता है? राजा भीष्मक से हमारी घनिष्ठता भले ही हो, फिर भी यदि वे अपनी कन्या का स्वयवर रचना चाहते हैं, तो हमारा क्या बिगड़ता है?

रेवती : देखो लाला, बात यह है कि अब तुम्हारा विवाह करना है न हमें?

कृष्ण : *मेरा विवाह ? अभी मैं विवाह-योग्य कहाँ हुआ हूँ ?*

बलराम : *तू क्या यह समझता है कि तेरी और मेरी उम्र में कोई बहुत ज्यादा फर्क है ?*

कृष्ण : *अब तुम्हीं बताओ भाभी। दादा को देखो और मुझे देखो—क्या फर्क होगा हम दोनों की उम्र में ?*

रेवती : *मैं नहीं जानती।*

कृष्ण : *जो आप नहीं जानतीं वह मैं जानता हूँ लेकिन देखने से क्या दिखता है ? हिमालय की तरह ये मेरे दादा हैं—इन्हें देखो, और बीते-भर टीले की तरह मैं हूँ—मुझे देखो। मैं तो व्यर्थ ही राजनीति में उलझ गया, वरना ग्वाल-बालों के साथ नदी-किनारे खेलने की उम्र है मेरी···*

रेवती : *कंस जैसे बहादुर को तुमने सिर्फ घूँसों से ही मार डाला···*

कृष्ण : *अजी, दुर्व्यसनों के कारण उसका शरीर तो पहले से ही खोखला हो चुका था। उसके मर्मस्थान पर एक घूँसा पड़ा और वह तड़ाक से मर गया। इस में मेरा कोई कमाल नहीं···*

बलराम : *बेशक तू ठीक कह रहा है—तेरा कोई कमाल नहीं···*

कृष्ण : *तो मैं भी कहाँ कहता हूँ कि मैंने कमाल किया।*

रेवती : *लेकिन दुनिया तो यही कहती है न कि कृष्ण ने कंस को मारा। इसीलिए तो जरासंध ने मथुरा पर चढ़ाई की थी। कंस का वह ससुर जो है न ? दामाद का बदला लेने के लिए उसने मथुरा को मटियामेंट कर देने की*

ठानी थी। लेकिन आखिर उसे ही मुहँ की खाकर भाग जाना पड़ा···

बलराम : *क्या तुम यह कहना चाहती हो कि यह कृष्ण के कारण ही हुआ ?*

कृष्ण : *नहीं दादा, वह श्रेय आप को है।*

बलराम : *नहीं, वह श्रेय हम दोनों को है। लेकिन उसमें सब से बड़ा हिस्सा तेरा है—चुप रह, तेरा हिस्सा है ही उसमें। मैं किसी का श्रेय चुराना नहीं चाहता। हाँ, तो जरासंध की समस्या अब फिर से खड़ी हो गई है। इस समय यदि हम पीछे हट गए तो इसका अर्थ यह होगा कि हम उससे डर गए। पहला मथुरा का आक्रमण, फिर गोमंत पर्वत की घटना, और जब॰से राजा शृगाल को मार कर हमने उसके पुत्र को सिंहासन पर बैठाया है, तब से जरासंध ने लड़ने का नाम ही छोड़ दिया। पर अब वह यह चाल खेलना चाहता है। यदि भीष्मक के हाथ में सत्ता होती तो वे हमें स्वयंवर का निमंत्रण भेजते। लेकिन रुक्मी तो है जरासंध की मुट्ठी में। इसीलिए हमें निमंत्रण नहीं आया···*

रेवती : *तो क्या वहाँ बिना निमंत्रण के जाना चाहिए ?*

बलराम : *क्यों नहीं जाना चाहिए! हम क्षत्री हैं। चाहे जिस राजा की लड़की को हर कर ले आने का हमें अधिकार है।*

रेवती : *पर यह तो स्वयंवर है न ?*

बलराम : *इसीलिए कृष्ण को वहाँ जाना चाहिए।*

कृष्ण : *स्वयंवर में ? नहीं दादा ! कितने बड़े-बड़े राजा आयेंगे वहाँ । और मैं हूँ गोकुल का एक ग्वाला । कुछ ही दिन तो हुए हैं कि दूध नापना छोड़कर मैंने धनुष-बाण हाथ में लिया है ! आपने यह कैसे सोच लिया दादा, कि बड़े-बड़े पराक्रमी वीरों को छोड़कर राजा भीष्मक की कन्या मेरे ही गले में वरमाला डालेगी ?*

बलराम : *तू वैसा है ही । इसीलिए वह तुझे ही वरेगी !*

कृष्ण : *वैसा, याने कैसा दादा ?*

बलराम : *वैसा, याने जैसा तू है वैसा । यदि मुझ-जैसा अक्खड़ होता, तो उस बेचारी के होश-हवास ही फाक्ता हो जाते !*

कृष्ण : *दादा, यह न भूल जाइए कि यहाँ भाभी भी हैं !*

बलराम : *मैं जानता हूँ । उसी से पूछ लो । उसका कौन स्वयंवर रचा गया था ? यदि उसका स्वयंवर रचा गया होता, तो वह क्या करती, यह उसी से पूछो ।* (रेवती से) *जरा देखो न हमारी तरफ । कहता हूँ न कि इधर देखो । रेवती, इधर आओ—बिल्कुल मेरे निकट आकर खड़ी हो जाओ ।*

रेवती : *हटिये, बड़े वो हैं आप ?...*

बलराम : *इस में हटने की क्या बात है ? मैं तुम्हारा पति हूँ न ? और यह तो मेरा छोटा भाई है । शर्माने के लिए यहाँ कोई बुजुर्ग नहीं है । आओ, इधर आओ ।* (उसे खींचकर अपने पास खड़ा कर लेता है ।) *अब देखो हम दोनों की तरफ । मुँह क्यों छिपा लिया ? इधर देखो-*

मेरी तरफ—क्या यह जोड़ी ठीक दिख रही है तुम्हें ? मैं हूँ भारी-भरकम, खासा लंबा-चौड़ा पुरुष, और यह है छोटी-सी, चंपा की कली की तरह कोमल युवती ! (रेवती एकदम अलग हट जाती है।) हमारे राज-घरानों में यही तो हो रहा है। जहाँ देखो वहाँ बेजोड़ जोड़ियाँ। हम लोग सत्ता के बल पर चाहे जिसे हर कर ले आते हैं और फिर नतीजा यह होता है···

रेवती : हाथ जोड़ती हूँ अब छोड़िए भी यह सब चर्चा···

बलराम : सच बोलने में मैं किसी के बाप से भी नहीं डरूँगा। वैसे देखा जाए तो कृष्ण में और मुझ में कोई अधिक वर्षों का अन्तर नहीं है। लेकिन यह है ऐसा सुकुमार···

रेवती : लेकिन जरासंध ऐसा समझता है क्या ? इन्होंने जरासंध से द्वन्द्व युद्ध किया था न ? क्या वह इन्हें सुकुमार कहेगा ?

बलराम : परन्तु उसकी ओर तनिक देखो तो। चाणूर जैसे मल्ल के साथ बाहु-युद्ध करते समय सभी ने देख लिया था कि कृष्ण का शरीर कितना गठीला है। लेकिन उसके चेहरे की ओर देखो; देखो न ! कैसा लाज से गड़ा जा रहा है ? इसे देख कर कौन कहेगा कि यह पुरुष है ?

कृष्ण : यह क्या मेरी तारीफ कर रहे हैं दादा ?

बलराम : तारीफ मैं किसी की भी नहीं करता। और यह न तारीफ है और न निंदा। यह यथार्थ है—मल्ल जैसा गठीला शरीर और रमणी जैसा सुन्दर मुख—अर्थात् मेरा कृष्ण। इसीलिए मैं कहता हूँ कि इसकी पत्नी

भी इसी के अनुरूप होनी चाहिए। सारा संसार कहता है कि राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी ऐसी ही रूपवती है। स्वयंवर में ऐसी रूपवती युवती कृष्ण को छोड़कर और भला किसको वरेगी ? इसीलिए मैं कहता हूँ कि कृष्ण, इस स्वयंवर में तुझे जाना ही चाहिए। यह यादवकुल की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। हम क्षत्री हैं, और हमें थोथे स्वाभिमान की अपेक्षा कुल की प्रतिष्ठा को ही अधिक महत्त्व देना चाहिए। यह तो तू भी मानता है न ?

कृष्ण : मैं यह कैसे नहीं मानूँगा दादा ? यह तो अनादि सिद्धान्त है। परन्तु सच कहता हूँ दादा, अभी मैं विवाह योग्य नहीं हुआ हूँ। ठहरिए जरा—आप कहेंगे कि हम दोनों की अवस्था में अधिक अन्तर नहीं है। यह सच है परन्तु हम दोनों के डील-डौल में कितना अन्तर है ? मेरी बाढ़ अभी रुक नहीं गयी है···

बलराम : विवाह में अवस्था देखी जाती है, बाढ़ नहीं। तू ऐसा क्यों कह रहा है यह मैं जानता हूँ। परन्तु तेरी भ्रमरीवृत्ति को रोकने के लिए ही मुझे तेरा विवाह कर देना है।

कृष्ण : दादा, हम लोगों के सामने भाभी खड़ी हैं।

बलराम : इसीलिए तो कह रहा हूँ मैं ! उसे भी मेरी यह बात जँच जाएगी। जहाँ तेरा विवाह हो गया कि फिर कोई भी तुझ पर अँगुली नहीं उठावेगा; समझा ? भोज-राज उग्रसेन की अनुमति प्राप्त होते ही हम दोनों सीधे विदर्भ चलेंगे।

रेवती : दोनों ?

बलराम : हाँ, दोनों। ऐसे काम में मुझे कृष्ण पर विश्वास नहीं। मुझे पहले राजा कैशिक से मिलना होगा। कैशिक से विलग होकर राजा भीष्मक कुंडिनपुर जाकर बसे हैं। परन्तु जो भी हो वे गुरुजन हैं उनके। पहले उनकी अनुमति प्राप्त करनी चाहिए। चल मेरे साथ। (वह जाने लगता है।) चल, सुना नहीं क्या ?

कृष्ण : पर दादा…

बलराम : मेरी आज्ञा का पालन कर। मैं तेरा बड़ा भाई हूँ। जो मैं कहूँ, वही होना चाहिए।

(अश्विनी प्रवेश करती है। वह एक यादव-कन्या है।)

कृष्ण : क्या है, अश्विनी !

बलराम : छोड़ अश्विनी को। पहले मेरे साथ चल। अश्विनी, तेरा काम बाद में देखा जाएगा। इस समय हम एक बड़े महत्त्वपूर्ण काम से जा रहे हैं। चल कृष्ण—

(कृष्ण का हाथ पकडकर उसे खींचकर ले जाता है।)

रेवती : क्या है अश्विनी बहिन !

अश्विनी : राजमाता ने मुझे आपके पास भेजा था।

रेवती : मेरे पास ?

अश्विनी : तुम दोनों के पास।

रेवती : तो फिर थोड़ी देर ठहर जाओ। उन्हें आ जाने दो। उनके आने पर ही जो कहना चाहती हो कहना।

अश्विनी : कहाँ गए हैं वे ?

रेवती : वे गए है भोजराज के पास । 'इनकी' सनक से तो तुम अच्छी तरह से परिचित हो ही । पहले से देख रही हो इन्हें । मेरी अपेक्षा तुम ही इनका स्वभाव अधिक पह-चानती हो । दूर का सम्बन्ध भले ही हो, फिर भी तुम इनकी बहिन हो । और मैं तो इस घर में अभी नयी-नयी आयी हूँ । यहाँ के सब लोगों से मेरा अभी ठीक से परिचय भी नहीं हुआ है । और ये तो स्वभाव के हैं बड़े भक्की—इन के विरुद्ध एक शब्द भी कहा जाये तो इन्हें सहन नहीं होता ।

अश्विनी : आज कौन-सी सनक सवार हो गई है बलराम दादा पर ?

रेवती : आज इन्हें कृष्ण का विवाह कर देने की सनक सवार हुई है ।

अश्विनी : किस के साथ ?

रेवती : विदर्भ की राजकन्या रुक्मिणी के साथ । समाचार मिला है कि उसके भाई ने उसका स्वयंवर रचा है । ये चाहते हैं कि कृष्ण वहाँ जाएँ, स्वयंवर में शामिल हों और रुक्मिणी को ब्याह कर ले आवें ।

अश्विनी : यही कहने तो मैं भी आई थी । राजमाता की भी यही इच्छा है । यह समाचार उनके कानों तक भी पहुँच चुका है ।

रेवती : तब तो कोई कठिनाई ही नहीं रही । वे गुरुजनों की सम्मति लेने के लिए ही वहाँ गए हैं ।

अश्विनी : यह नहीं कहा जा सकता कि कोई कठिनाई नहीं है ।

आज घर के सब जेठे-सयाने इसी विषय पर चर्चा कर रहे थे। प्रश्न यह है कि निमंत्रण के बिना वहाँ जाएँ कैसे? निमंत्रण भेजे गए हैं देश-देश के राजाओं को—और हमारा कृष्ण तो कहीं का भी राजा नही है। कृष्ण गया और वहाँ उसका अपमान हो गया तो उग्रसेन महाराज को प्राणान्तक कष्ट होगा।

रेवती : यह प्रश्न सचमुच बड़ा जटिल है। क्या किसी ने इसे हल करने का कोई उपाय सुझाया?

अश्विनी : उग्रसेन महाराज कंस-वध के समय ही अपना राज्य कृष्ण को दे रहे थे। लेकिन कृष्ण ने उसे स्वीकार नहीं किया। इसी का महाराज को बड़ा दुःख हो रहा है। अपना राज्य कृष्ण को देने के लिए वे आज भी तैयार हैं क्योंकि उसी ने तो उसे प्राप्त किया है न! और उसका राज्य ही तो उसको देना है। परन्तु कृष्ण को यह बात जँचे तब न? बड़ा हठीला है वह। महाराज को यही एक बड़ी चिन्ता सता रही है।

रेवती : तो फिर आगे क्या होगा?

अश्विनी : अब गर्ग मुनि ही चाहें तो कोई रास्ता निकाल सकते हैं। महाराज को ऐसा लगता है कि कृष्ण गर्ग मुनि की बात को कभी नहीं टालेगा और इसीलिए वे उनसे सलाह लेने वाले हैं। संभवतः मुनि जी अभी तक यहाँ आ भी गए हों। (कृष्ण आता है।) यह क्या? तुम लौट आए? दादा कहाँ हैं? क्या गर्ग मुनि आए हैं वहाँ?

कृष्ण : (हँसकर) इसीलिए तो भाग आया वहाँ से ! तुम औरतों का क्या केवल यही धंधा है ? क्या तुम यह सोचती हो कि किसी भी पुरुष का किसी भी स्त्री से तुमने विवाह करा दिया कि तुम्हारा जीवन सार्थक हो गया ?

रेवती : यह किसे लक्ष्य करके कह रहे हो लाला !

कृष्ण : तुम सभी को । क्या माँ, क्या बहिन, क्या भाभी, तुम सब की जाति एक ही है । पुरुष को येन-केन-प्रकारेण किसी स्त्री के गले बाँध देना । बस, इसी चक्कर में रहती हो तुम सब !

अश्विनी : बात क्या है ? क्या तुम विवाह ही नहीं करना चाहते ?

कृष्ण : मैंने यह कहाँ कहा ? मुझे हमेशा ऐसा लगता है कि मैं आजन्म ब्रह्मचारी ही बना रहूँ । परन्तु मैं सोचता हूँ कि राज-परिवार में जन्म लेने वाले पुरुष के लिए यह संभव नहीं ।

अश्विनी : अच्छा ? फिर क्या करने वाले हो तुम ?

कृष्ण : यही तो मैं तय नहीं कर पा रहा हूँ । पत्नी सहधर्मचारिणी होती है, इसीलिए दोनों में साधर्म्य होना चाहिए । यदि इस साधर्म्य का अभाव रहा तो विवाह कभी सुखमय नहीं हो सकता । दोनों के विचार एक दूसरे से मिलना चाहिए—दोनों के मत एक दूसरे के गले उतरना चाहिए । दोनों परस्पर अनुरूप होने चाहिए—दिखने में भी—

रेवती : *हाँ-हाँ—मैं समझ गयी।*

कृष्ण : *तो बताओ, क्या झूठ है यह? केवल आचार-विचार एक होने से ही काम नहीं बनता। दोनों के डील-डौल भी मिलते-जुलते होने चाहिए।*

रेवती : *तो फिर आज तक जितने विवाह हुए क्या वे सब दुःखपूर्ण ही सिद्ध हुए?*

कृष्ण : *दुःखपूर्ण चाहे न सिद्ध हुए हों, पर सुखपूर्ण निश्चित ही नहीं। ऐसा जुआ मैं नहीं खेलना चाहता। दाँव लगाने पर पाँसा अपनी ओर ही पड़ना चाहिए।*

अश्विनी : *पर तुम यह क्यों सोच रहे हो कि पाँसा तुम्हारी ओर नहीं पड़ेगा? क्या तुमने लड़की देखी है? क्या तुम उसके बारे में कुछ जानते हो?*

कृष्ण : *वही तो मैं कह रहा हूँ। पुराने रीति-रवाज, पुराने आचार-विचार—केवल यही नहीं, बल्कि पुराने तत्त्व-ज्ञानों को भी मैं समाप्त कर देना चाहता हूँ। और इसका श्रीगणेश अभी से कर देना है मुझे। मनुष्य को यह अभिमान होता है कि सत्ता के बल पर वह चाहे जो कर लेगा। सत्ता प्राप्त होने से यह संभव भी हो जाता है। लेकिन यह न्यायसंगत नहीं है। और मैं अपनी गृहस्थी अन्याय की नींव पर खड़ी नहीं करना चाहता। मेरा जन्म राजकुल में भले ही हुआ हो, पर मैं राजा नहीं हूँ। मुझे राजपद की इच्छा नहीं। प्रजा पर धाक जमाने के लिए राजपद आवश्यक होता है। लेकिन सत्ता की धाक जमाने से क्या प्रजा सुखी होती है? मुझे अनुभव करना है इस बात का।*

मैं किसी पर कभी धाक नहीं जमाऊँगा और साथ ही न अपने पर किसी को धाक जमाने दूँगा। इसीलिए तुम्हारी इस योजना का मैं तीव्र विरोध करूँगा।

(बलराम और गर्ग मुनि प्रवेश करते हैं।)

बलराम : *अच्छा ! क्या तू विरोध करेगा ? क्यों ? किसका ? गुरुजनों का ? तू अपने आप को समझ क्या रहा है ? एक शब्द भी न बोला और एकदम खिसक आया ! किसी की सुनी तक नहीं ! गुरुजनों को इस तरह अपमानित करने का तुझे साहस कैसे हुआ ?*

कृष्ण : *मैंने किसका अपमान किया है दादा ? क्या एक भी शब्द मैं बोला था वहाँ ?*

बलराम : *मैं भी तो वही कह रहा हूँ। एक शब्द भी न बोला और सटक आया ? इससे अधिक अपमान करना और क्या होता है ?*

गर्ग मुनि : *शान्त हो बलराम—शान्त हो कृष्ण ! गुरुजनों की इच्छा है कि तुम कुंडिनपुर जाओ। स्वयंवर में भाग लो…*

कृष्ण : *और अपना अपमान करा लो।*

गर्ग मुनि : *अपमान क्यों होगा ?*

कृष्ण : *बिना निमंत्रण के जाना क्या उचित होगा ? देश-देश के राजाओं को निमंत्रण भेजे गए हैं—निमंत्रण राजाओं को ही भेजे गए हैं। मैं राजा नहीं। मैं वहाँ गया और राजा न होने के कारण उन्होंने यदि मुझे निकाल बाहर कर दिया तो क्या वह अपमान न*

होगा ? केवल मेरा ही नहीं, बल्कि वह सारे यादव-कुल का अपमान होगा।

बलराम : (क्रोध से एकदम उठकर) वह कौन माई का लाल है जो तेरा अपमान करे ?

कृष्ण : क्या आप नहीं जानते दादा, कि वहाँ जरासंध की तूती बोल रही है !

गर्ग मुनि : पर वह भीष्मक का राज्य है और भीष्मक हमारा मित्र है। वह तुम्हारा अपमान नहीं करेगा।

कृष्ण : राज्य भले भी भीष्मक का हो, पर वहाँ शासन रुक्मी का चलता है। यदि ऐसा न होता, तो कैशिकों को छोड़कर भीष्मक को कुंडिनपुर क्यों आना पड़ता ? जरासंध के बहकावे में आकर यदि रुक्मी ने मेरा अपमान किया तो वहाँ युद्ध ही छेड़ देना पड़ेगा। क्या भीष्मक से बैर करने को आप तैयार हैं ?

गर्ग मुनि : ऐसा नहीं होगा। राजा भीष्मक वह अवसर ही न आने देगा।

कृष्ण : आप यह किस आधार पर कह रहे हैं ? निमंत्रण राजाओं को है—मैं राजा नहीं···

बलराम : तो फिर मथुरा के सिंहासन पर बैठा कर ही हम तुझे वहाँ भेजेंगे।

कृष्ण : क्या भोजराज उग्रसेन महाराज को राजसिंहासन से उतारकर ?

गर्ग मुनि : राजसिंहासन से उतारने का प्रश्न ही कहाँ है ? क्या

वानप्रस्थाश्रम स्वीकार करने के लिए बहुत से राजा अपने पुत्रों को राजसिंहासन पर नहीं बैठा देते ?

कृष्ण : मैं उनका पुत्र नहीं हूँ।

बलराम : तुम उनके नाती तो हो।

कृष्ण : उनकी लड़की का लड़का हूँ—लड़कों का नहीं। मथुरा के राजसिंहासन पर मेरा रंचमात्र भी अधिकार नहीं।

गर्ग मुनि : मथुरा के राजसिंहासन की तुमने रक्षा की। कारागार में बंद पड़े उग्रसेन को तुम्हारे ही पराक्रम के कारण पुनः अपना राज्य प्राप्त हुआ। यदि वे तुम्हें राजसिंहासन पर आसीन करते हैं तो इसका यही अर्थ होगा कि तुम्हारा राज्य तुम्हें ही सौंप दिया।

कृष्ण : एक बार जिस राज्य को मैं दे चुका, क्या मैं उसे फिर से वापस ले लूँ ? नहीं, यह यादव-कुल की टेक नहीं।

बलराम : तो फिर क्या करेगा ? तू यदि इस स्वयंवर में न गया तो वह यादव-कुल की अप्रतिष्ठा होगी ? और यदि तू राजा नहीं हुआ तो तुझे वे लोग स्वयंवर में सम्मिलित नहीं होने देंगे। फिर यह समस्या कैसे हल हो ?

गर्ग मुनि : मुझ पर तुम लोगों का विश्वास है न ? यादव-कुल का मैं राजगुरु हूँ। कंस ने मुझे निकाल दिया था जिसका प्रायश्चित उसे भोगना पड़ा। कृष्ण के प्रभाव से जिस तरह महाराज उग्रसेन ने राज्य प्राप्त किया है,

उसी तरह मैंने अपना राजगुरु-पद पा लिया है। अपना यह पद सार्थक करने के लिए इसी समय मुझे आगे बढ़ना होगा। आओ कृष्ण—मेरे साथ आओ।

कृष्ण . *हम कहाँ जाएँगे ?*

गर्ग मुनि : *हम विदर्भ नगरी चलेंगे—भीष्मक के पिता राजा कैशिक के घर। वे ही इस समस्या को हल करने का कोई उपाय बता सकते है।*

बलराम : *तो मैं भी चलता हूँ आपके साथ।*

कृष्ण : *नहीं दादा ! आप को यहीं रहना चाहिए, नहीं तो मथुरा की रक्षा कौन करेगा ? यदि हम सभी चले गए, तो यह जानकर कि नगरी सूनी हो गई है, कपटी जरा-संध मथुरा पर आक्रमण कर देगा।*

गर्ग मुनि : *कृष्ण ठीक कहता है। तुम्हारा यहीं रहना आवश्यक है, बलराम ! चलो कृष्ण, गुरुजनों की आज्ञा लेकर हम चलें।*

(कृष्ण बलराम को प्रणाम करता है और बाद में जब रेवती को प्रणाम करने जाता है तो रेवती उसे प्रणाम नहीं करने देती।)

रेवती : *मैं अवस्था में तो तुम से छोटी हूँ लाला !*

कृष्ण : *पर तुम मेरी बड़ी भाभी जो हो—दादा बड़े हैं इसलिए तुम भी बड़ी ही हो। इस शुभ कार्य के लिए मुझे तुम्हारा आशीर्वाद चाहिए।*

गर्ग मुनि : *कृष्ण सच कहता है।*

(कृष्ण रेवती को प्रणाम करता है। वह 'विजयी भव' कहकर उसे आशीर्वाद देती है।)

अश्विनी : *और क्या मुझे भूल गए, कृष्ण ?*

कृष्ण : *तुम्हें कैसे भूल जाऊँगा अश्विनी दीदी ? क्या मैं नहीं जानता कि यह सारा षड्यंत्र तुम्हारा ही रचा हुआ है। तुम्हारा आशीर्वाद पहले ही मिल चुका है मुझे।*

अश्विनी : *मेरे कृष्ण को सम्हाल कर ले जाना मुनिराज !*

गर्ग मुनि : *जिसमें सारे जग को सम्हालने की सामर्थ्य है, उसे यदि किसी को सम्हालना है तो हम बूढ़ों को ही। चलो कृष्ण—*

(कृष्ण और गर्ग मुनि जाने लगते हैं। परदा गिरता है।)

●

दूसरा दृश्य

[कुंडिनपुर की एक सड़क। राजा भीष्मक के राजमहल का एक सेवक दंडक और दासी सुनीता प्रवेश करते हैं।]

दंडक : *ए सुनीता, जरा ठहरो तो—इतनी जल्दी क्या है ?*

सुनीता : *अरे बाबा, जल्दी तो जैसे हम दासियों के भाग्य से ही बँधी है। जल्दी का काम न भी हो फिर भी हमें यह दिखाना पड़ता है कि हम बड़ी जल्दी में हैं। यदि ऐसा न करें तो फिर हम राजमहल की दासियाँ ही कैसी ?*

दंडक : *तो मतलब यह हुआ कि तुम्हें कोई जल्दी नहीं है। अब मुझे यह बताओ कि क्या स्वयंवर का दिन निश्चित हो चुका है ?*

सुनीता : *क्या तुम्हें यह भी नहीं मालूम ?*

दंडक : *मुझे कैसे मालूम हो सकता है ? मैं कुंडिनपुर में था ही कहाँ ?*

सुनीता : *हाँ, तभी ! वरना ऐसी गड़बड़ी में तुम तो अगुवा रहते। कहाँ गए थे ?*

दंडक : *मैं गया था विदर्भ नगर। पितृकुल जो है न ? बड़ी रानी जी ने मुझे भेजा था वहाँ अपनी सास के घर। अब स्वयंवर हो रहा है न। यदि जेठे-सयाने उपस्थित न हों तो रीति-रिवाज कौन बताएगा ? इस घर का यह पहला ही मंगल-कार्य है।*

सुनीता : *फिर वे आ रही हैं क्या ?*

दंडक : *क्यों नहीं आएँगी ? वे तो निमंत्रण की प्रतीक्षा ही कर रही थीं। उन्हें निमंत्रण देने मुझ जैसा एक सेवक भेजा गया, यह संभवतः उन्हें अच्छा न लगा हो। परन्तु वे पुराने विचार के लोग हैं। ऐसे समय वे मान और अपमान का कोई विचार नहीं करते। सच पूछा जाए तो अपने गुरुजनों को निमंत्रण देने के लिए स्वयं महाराज को ही जाना चाहिए था ?*

सुनीता : *है तो सच ! पर यहाँ महाराज को पूछता कौन है ? भीष्मकराज कहाँ चाहते थे कि रुक्मिणी का स्वयंवर हो ?*

दंडक : *मतलब ? क्या राजकन्या का विवाह उन्होंने कहीं पहले ही तय कर दिया था ?*

सुनीता : *उन्होंने लाख तय कर दिया हो, लेकिन उनकी सुनता कौन है ? इसीलिए तो उन्हें विदर्भ नगरी छोड़कर कुंडिनपुर आकर रहना पड़ा। युवराज रुक्मी जो कहेंगे वही होगा।*

दंडक : *वे क्या कहते हैं ?*

सुनीता : *वे क्या कहेंगे ? उन्होंने तो शिशुपाल से रुक्मिणी का विवाह तय ही कर दिया है।*

दंडक : *फिर यह स्वयंवर क्यों हो रहा है ?*

सुनीता : *सिर्फ एक ढोंग है।*

दंडक : *फिर भिन्न-भिन्न देश के राजाओं को निमंत्रण भेजने की जरूरत क्या थी ?*

सुनीता : *सिर्फ मंडप की शोभा के लिए। इसी बात को लेकर तो उस दिन बहिन और भाई में बहुत झगड़ा हो गया था।*

दंडक : *झगड़ा हो गया था? सो क्यों?*

सुनीता : *जब युवराज ने राजकुमारी से कहा कि स्वयंवर के मंडप में जाते ही तुम्हें शिशुपाल के गले में माला डालनी होगी, तो राजकुमारी झल्ला उठी और उसने अपने बड़े भाई को खूब खरी-खोटी सुनायीं।*

दंडक : *ठीक ही तो है। यह उसके सम्पूर्ण जीवन का प्रश्न है। वह क्यों चुप रहे? पर महाराज ने क्या कहा?*

सुनीता : *महाराज क्या कह सकते हैं? युवराज के सामने मुँह खोलने का उनमें साहस ही कहाँ है? रुक्मिणी जब क्रोध से बोलने लगी तो युवराज उस पर टूट पड़े। गनीमत हुई जो महाराज बीच में आ गये नहीं तो युवराज अपनी बहिन को पीट ही देते।*

दंडक : *क्या इतने आपे से बाहर हो गए थे वे?*

सुनीता : *यह तो स्वभाव ही है उनका। इसीलिए तो घर के भीतर फूट घुस गयी है। वैसे देखा जाए तो युवराज भी स्वयं अपनी बुद्धि से कहाँ काम ले रहे हैं? वे हैं जरासंध की मुट्ठी में। उसी के संकेतों पर नाचते हैं। ऊपर से वहाँ शाल्व और सुनीथ भी डटे हुए हैं उकसाने के लिए। वे भी तो जरासंध के पिट्ठू ही हैं न? मुए, सब श्रीकृष्ण से द्वेष करते हैं। और इधर रुक्मिणी श्रीकृष्ण को अपना हृदय निछा-*

वर कर बैठी है। और महाराज भी श्रीकृष्ण को ही चाहते हैं। उधर युवराज का यह हाल है कि श्रीकृष्ण का नाम सुनते ही उनके सारे वदन में जैसे आग लग जाती है—कुल मिलाकर ऐसी समस्या खड़ी हो गई है?

दंडक : तो फिर यह हल कैसे होगी?

सुनीता : उस दल में सिर्फ दंतवक्त्र ही महाराज की तरफ हैं। दोनों पक्षों को सम्हालते-सम्हालते उनकी नाकों दम हो रही है। इस से तो हमीं अच्छे—जिसके साथ बाँध दिया उसी के साथ मगन।

दंडक : तुम्हें किसके साथ बाँध रहे हैं?

सुनीता : तुम्हारे साथ मुझे नहीं बाँधा जा रहा है, यह बिल्कुल निश्चित है।

दंडक : मेरे घर में विवाह-योग्य लड़का मुझे छोड़कर दूसरा कौन है? और तुम से मेरा विवाह तो तय ही हो चुका है।

सुनीता : अरे वाह, तुम तो बिल्कुल रुक्मिणी जैसी बातें करने लगे! क्यों जी, हमारा तुम्हारा विवाह कब तय हुआ है?

दंडक : देखो सुनीता, अब यह आँख-मिचौनी मत खेलो। यह मौका बड़ा अच्छा है। बड़े लोगों के शुभ कार्य में हमारा शुभ काम भी हो जाएगा। राज-परिवार के विवाह-समारोहों में गरीबों के विवाह सम्पन्न करने

की प्रथा है। इसलिए इस विवाह-समारोह में हम भी अपना विवाह कर लेंगे।

सुनीता : लेकिन यह विवाह ही कहाँ हो रहा है?

दंडक : मतलब? युवराज ने तय कर दिया है न? और हमारे कुंडिनपुर में युवराज जो बात तय कर लेते हैं, वह न हो, ऐसा आज तक कभी नहीं हुआ।

सुनीता : और अब हो गया तो?

दंडक : तुम यह किस आधार पर कह रही हो?

सुनीता : अब तुम स्वयं ही देख लोगे। राजकन्या का निश्चय बिल्कुल दृढ़ है—विवाह करूँगी तो कृष्ण से ही। यह सच है कि महाराज की कुछ नहीं चलती, लेकिन कल जब कैशिक महाराज आ जाएँगे और रुक्मिणी का पक्ष लेंगे तो युवराज के सामने भी एक बड़ी समस्या खड़ी हो जायगी।

दंडक : मैं नहीं सोचता कि ऐसा होगा। यदि युवराज में कैशिक महाराज की आज्ञा-पालन करने योग्य सज्जनता होती, तो घर में यह फूट क्यों पड़ती? साथ ही युवराज को जरासंध जैसे महा प्रतापी राजा का पूर्ण समर्थन प्राप्त है—और जरासंध तो कृष्ण का जानी दुश्मन है। कृष्ण से वह कई बार हार चुका है। अब सिर्फ एक ही आशा बची है। यदि श्रीकृष्ण ही कोई षडयंत्र रचें तो कुछ हो सकता है। पर वहाँ भी एक कठिनाई है। यादवों को स्वयंवर का निमंत्रण ही नहीं गया है। तुम कुछ भी कहो सुनीता, पर रुक्मिणी और शिशुपाल का विवाह पत्थर की लकीर समझो—

वह होकर ही रहेगा—किसी भी हालत में रुक नहीं सकता। और जहाँ उनकी भाँवरें पड़ीं कि फिर हम दोनों के हाथ भी पीले हुए ही समझो।

सुनीता : तो फिर फिलहाल मैं विवाह ही न करूँगी। यदि तुम यह चाहते हो कि हम दोनों का विवाह हो तो देवी जी के मन्दिर में जाकर मनौती मनाओ कि यह स्वयं-वर न हो।

दंडक : मनौती मनाने से कुछ न होगा। राजकुल के विवाह जब एक बार निश्चित हो जाते हैं तो वे पत्थर की लकीर होते हैं—उनमें कोई परिवर्त्तन नहीं हो सकता। स्वयंवर तो रचा ही है। शिशुपाल भी यहाँ आकर डटा हुआ है। दोनों को राजा जरासंध की पूरी मदद है।

सुनीता : आग लगे तुम्हारी जीभ को! ऐसी अशुभ बातें करोगे, तो चाहे प्राण चले जाएँ, फिर भी तुमसे विवाह न करूँगी।

दंडक : हाथ कंगन को आरसी क्या—अब खुद अपनी आँखों से सब कुछ देख ही लोगी।

सुनीता : क्या देख लूँगी? मैं तुम से कहे देती हूँ कि यह स्वयं-वर भंग होगा—भंग होगा, देख लेना।

दंडक : तो तुम्हारा मुँह मीठा कर दूँगा। मैं भी तो यही चाहता हूँ। लेकिन यह दुःसाध्य है, इसमें संदेह नहीं।

सुनीता : मुए मर्दों की जात ही डरपोक होती है। दुःसाध्य है या सरल है यह तुम खुद देख लोगे। (जाती है।)

दंडक : अजी, जरा ठहरो तो सुनीता—(वह भी उसके पीछे चल देता है। परदा गिरता है)।

तीसरा दृश्य

[कुंडिनपुर के राजप्रासाद का एक कक्ष । जरासंध, रुक्मी, शाल्व और दंतवक्त्र आसनास्थ हैं ।]

जरासंध : *सुना रुक्मी ? तुम्हारी इच्छा पूरी करने का मैंने बीड़ा उठाया है । शिशुपाल ही रुक्मिणी के अनुरूप है । इस विवाह से हमारे सारे राज-मंडल में एकता निर्मित होगी । तुम्हारी प्रार्थना मैंने मुख्यतः इसी उद्देश्य से स्वीकार की है ।*

रुक्मी : *अब निश्चिंत हो गया । दादा जी का विरोध, पिता-जी का विरोध और स्वयं रुक्मिणी का भी विरोध—इन सारे विरोधों का सामना करना मुझे बड़ा कठिन हो रहा था । अब मगधाधिपति का समर्थन प्राप्त हो जाने पर मुझे किसी की भी चिन्ता नहीं रही ।*

दंतवक्त्र : *इस प्रस्ताव के कारण, एकता की आड़ में कहीं विरोध के अंकुर तो नहीं फूट आएँगे ?*

जरासंध : *दंतवक्त्र, शुभ काम में बाधा न डालो । अभी भीष्मक यहाँ आएँगे । एक तो पहले से ही वे विरोध कर रहे हैं और तुम्हीं यदि ऐसा कहने लगोगे, तो उनका विरोध और बल पकड़ लेगा । कुछ भी ऊँट-पटाँग बकने से चुप रहना ही अच्छा ।*

दंतवक्त्र : *और चुप बैठे रहने की अपेक्षा यहाँ से एकदम चल देना ही अच्छा ।*

रुक्मी : *तो फिर चले जाओ यहाँ से। हर एक मुझे परेशान कर रहा है। उनमें एक तुम और क्यों रहो?*

दंतवक्त्र : *ठीक है। जैसी तुम्हारी इच्छा।* (एकदम उठकर चला जाता है।)

रुक्मी : *अरे, क्या यह सचमुच नाराज हो गया! कहीं कोई बवाल तो नहीं खड़ा कर देगा?*

जरासंध : *मैं यहाँ उपस्थित हूँ, यह तुम भूल रहे हो, रुक्मी! इस काम की बागडोर मेरे हाथ में है और इसे पूरा किये बिना मैं चैन नहीं लूँगा, यह तुम ठीक तरह से समझ लो। ठहरो—* (भीष्मक आते हैं।) *पधारिए भीष्मक राज,* (हँसकर) *आप के घर में मैं ही आप का स्वागत कर रहा हूँ, इसके लिए मुझे क्षमा करें—ठीक है न! शाल्वराज, रुक्मी, अब मेरा प्रस्ताव सुनो। राजा भीष्मक ने अपनी कन्या के स्वयंवर रचने का निश्चय किया है और उसके लिए हम गुरुजन निमंत्रण से यहाँ आए हैं। कहिए, भीष्मक राज यही बात है न?*

भीष्मक : *राजा जरासंध आप सब लोगों ने यहाँ पधारने की कृपा की, यह मेरा अहोभाग्य है। लेकिन जिस स्वयंवर के लिए आप यहाँ पधारे हैं, वह स्वयंवर मेरी सम्मति से नहीं हो रहा है···*

रुक्मी : *यह स्वयंवर मेरी सम्मति से हो रहा है। आप का काम केवल यह देखना है कि अतिथियों का यथोचित रीति से स्वागत हो रहा है या नहीं! युवराज रुक्मी*

अपने पिता से इससे अधिक और कुछ अपेक्षा नहीं करता।

जरासंध : रुक्मी, शान्त होओ। जो भी हो, आखिर वे तुम्हारे पिता हैं—कुंडिनपुर के राजा हैं—सत्ताधारी हैं। जो कुछ होना है, उन्हीं की अनुज्ञा से होना चाहिए। और मैं उनसे उसी अनुज्ञा की प्रार्थना करता हूँ। मुझे विश्वास है कि वह मेरी--राजा जरासंध—की बात नहीं टालेंगे। सच है न, भीष्मक राज !

भीष्मक : तुम सब लोगों ने मिल कर सब कुछ तय ही कर डाला है। मगधाधिपति जरासंध, मेरी अनुज्ञा की अब आवश्यकता ही कहाँ रही ?

जरासंध : ठीक है। इसे मैं आपकी अनुज्ञा ही मानता हूँ। यदि आप को शिशुपाल जैसा पराक्रमी दामाद मिल गया तो इसे मैं कुंडिनपुर का सौभाग्य ही समझूँगा।

भीष्मक : राजा जरासंध, यहाँ शिशुपाल से क्या सम्बन्ध है ? यह तो स्वयंवर है। इस में देश-देश के राजाओं को जो निमंत्रण भेजे गये हैं वे स्वयंवर के लिए ही न ? स्वयं-वर-मंडप में रुक्मिणी किस के गले में माला पहनाएगी, यह न तुम कह सकते हो और न मैं ही···

रुक्मी : उसे शिशुपाल के गले में ही माला पहनानी होगी।

भीष्मक : फिर यह स्वयंवर का ढोंग क्यों ? देश-देश के राजाओं को कुंडिनपुर आने का कष्ट ही क्यों दिया गया ? शिशुपाल का रुक्मिणी के साथ सीधा विवाह ही क्यों नहीं कर देते ?

जरासंध : नहीं भीष्मकराज, यह होना इष्ट नहीं है। स्वयंवर तो होना ही चाहिए। मेरा विश्वास है कि रुक्मिणी शिशुपाल को ही माला पहनाएगी। शिशुपाल के आगे भारत के सारे राजा तेजहीन हो जाएँगे और ऐसे हतप्रभ राजाओं के बीच वह शिशुपाल को छोड़ और किस को माला पहनाएगी?

भीष्मक : परन्तु वह तो मथुरा के श्रीकृष्ण को ही अपने मन-मंदिर का देवता बना चुकी है।

जरासंध : अज्ञानी लड़की के इस मूर्खता-पूर्ण विचार पर बड़ों को ध्यान नहीं देना चाहिए। किस खेत की मूली है वह श्रीकृष्ण? क्या है उसकी योग्यता?

भीष्मक : मगधराज, उससे तो आप भली-भाँति परिचित हैं।

जरासंध : हाँ, यह सच है। श्रीकृष्ण की योग्यता मै जानता हूँ। वह वीर है, योद्धा है, बलवान है। लेकिन कौन है यह श्रीकृष्ण? मथुरा का एक मामूली सैनिक—सेनापति भी नहीं। क्या आप अपनी लड़की का विवाह एक मामूली सैनिक से कर देंगे?

भीष्मक : मैं कुछ भी नहीं करूँगा। अपनी बुद्धि से काम लेने का मुझे अवसर ही नहीं है। वह जो कहती है, वही मैंने आप से कहा···

रुक्मी : वह चाहे जो बक सकती है लेकिन हमें तो अपनी प्रतिष्ठा का ख्याल रखना होगा। यदि मेरी बहिन एक गँवार ग्वाले के गले में माला पहनाने को तैयार हो गई, तो कुंडिनपुर की प्रतिष्ठा के लिए मुझे उसका निषेध करना पड़ेगा।

जरासंध : *जो युवराज रुक्मी कह रहे हैं, वह न्याय-संगत है। यह राजकुल की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। उस प्रतिष्ठा के लिए लड़ने वाले युवराज रुक्मी का समर्थन करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। मेरी बात आप समझ रहे हैं न शाल्वराज! वह आप को जँचती है न?*

शाल्व : *मगधाधिपति गलत सलाह कैसे दे सकते हैं? राजकुल की प्रतिष्ठा की अपेक्षा एक अज्ञान लड़की की मूर्खता-पूर्ण सनक को महत्व देना कम-से-कम भीष्मक जैसे वयोवृद्धों को तो शोभा नहीं देता।*

जरासंध : *सुन लिया भीष्मकराज—? सभी का यह विचार है—सभी इस स्वयंवर से सहमत हैं···*

भीष्मक : *मुझे क्षमा कीजिए जरासंध···लेकिन यह स्वयंवर है ही नहीं। मान लो रुक्मिणी ने किसी को भी माला न पहनाई—स्वयंवर-मंडप में एकत्रित राजाओं में से किसी को भी न चुन कर यदि वह चली गयी, तब आप क्या करेंगे?*

रुक्मी : *क्या ऐसा कोई षड्यंत्र रचा है आप ने?*

भीष्मक : *मैं कुछ भी नहीं करना चहता। मैं तुम लोगों के सामने केवल एक प्रश्न रखना चाहता हूँ। मान लो कृष्ण स्वयंवर में आ गया तो···*

शाल्व : *कृष्ण आ कैसे सकता है? उसे बुलाया किसने है? बिना निमंत्रण के स्वयंवर में आने के लिए उसे अनुमति कौन देगा?*

भीष्मक : *लेकिन मान लो, वह आ ही गया···*

रुक्मी : *तो मैं हाथ पकड़ कर उसे मंडप से बाहर निकाल दूँगा। इस स्वयंवर में हमने राजाओं को निमंत्रण दिया है—ग्वालों और गुडों को नहीं।*

जरासंध : *युवराज रुक्मी अपनी प्रतिष्ठा के महत्व को पूरी तरह से जानते हैं। इस स्वयंवर में किसे आना चाहिए और किसे नहीं आना चाहिए, यह कहने का अधिकार उनका है। यह स्वयंवर युवराज रुक्मी ने रचा है और इस स्वयंवर में युवराज रुक्मी का ही अधिकार सब मानेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।*

शाल्व : *यदि कृष्ण को स्वयं की प्रतिष्ठा का ध्यान होगा तो वह इस स्वयंवर में बिना निमंत्रण के कदापि नही आएगा। जो बात कभी होगी ही नहीं, उसके बारे में यह झूठी कल्पना करके कि वह हो गई है, अकारण चर्चा ही क्यों की जाए?*

भीष्मक : *इस दुनिया में असंभव कुछ भी नहीं है—और श्रीकृष्ण के जीवन में तो असंभव बातें भी संभव हो गयी हैं—कम-से-कम मैं तो यह कभी नहीं भूलूँगा।*

रुक्मी : *इस में कोई संदेह नही! आप ने निश्चय ही कोई षड्यंत्र रचा है। आप ने निश्चित ही गुप्त रूप से कृष्ण को निमंत्रण भेजा है…*

भीष्मक : *टट्टी की ओट से शिकार करना भीष्मक पसन्द नहीं करता। यदि मुझे यह विश्वास होता कि श्रीकृष्ण का यहाँ अपमान न होगा, तो मैं उसे अवश्य ही निमंत्रण भेज देता।*

जरासंध : *शान्त ! भीष्मकराज, शन्त हों। आप पर मेरा पूर्ण विश्वास है और मैं जानता हूँ कि आप भी मुझ पर विश्वास रखते हैं। इस काम का सारा दायित्त्व मैंने अपने आप पर ले लिया है, और वह निर्विघ्नता से पूरा हो, इस के लिए मैं सदैव तत्पर रहूँगा। भीष्मकराज, आप सब कुछ मुझ पर छोड़ कर निश्चिंत हो जाइए। मैं ऐसी कोई बात न होने दूँगा जिससे आप की कन्या का कोई अकल्याण हो। मैंने पूरी सावधानी बरती है। इस के बावजूद कृष्ण यहाँ आ ही गया—*

सेवक : (प्रवेश करके) *श्रीकृष्ण आए हैं।*

जरासंध : *क्या कहता है ? कृष्ण आया है ? कहाँ आया है ? क्या यहाँ कुंडिनपुर में ?*

सेवक : *जी नहीं, विदर्भ नगर में। राजा कैशिक के विदर्भ नगर में श्रीकृष्ण आए हैं...*

जरासंध : *क्या यह सच है भीष्मकराज ?*

भीष्मक : *मुझे कोई पता नहीं। लेकिन हाँ, कैशिकराज अवश्य यहाँ आ रहे हैं अपनी पौत्री का स्वयंवर देखने को। मैंने उन्हें निमंत्रण भेजा है और यदि कृष्ण वहाँ आया होगा...*

रुक्मी : *तो वह भी उनके साथ यहाँ आएगा—क्या यही आप कहना चाहते हैं ? लेकिन मेरी प्रतिज्ञा सुनी है आपने ?*

भीष्मक : *यह भीष्मक अतिथि का अपमान कदापि न होने देगा ।*

जरासंध : *अतिथि का सत्कार करना गृहस्थ का कर्तव्य है । मैं इसका विरोध नहीं करता । मेरा कहना केवल यही है कि अतिथि के बहाने राजा भीष्मक एक मामूली ग्वाले को राजसभा में उपस्थित होने की अनुमति ही प्रदान न करें ।*

भीष्मक : *यदि मेरे पिता के साथ श्रीकृष्ण इस राजसभा में आए, तो उनका विरोध करने का मुझे अधिकार नहीं ।*

रुक्मी : *आपका ही—बस, आप का ही यह सारा षड्यंत्र है । आप इसे स्वीकार करें या न करें ! हमारे कार्य-क्रम को चौपट कर देने के लिए आप ने यह चाल चली है । हाँ, पर मैं आपकी यह चाल कदापि सफल नहीं होने दूँगा । स्वयंवर-मंडप से कैशिक-राज को भी कृष्ण के साथ बाहर जाना पड़ेगा ।*

जरासंध : *युवराज रुक्मी, ऐसा अत्याचार करना उचित नहीं । जिस समय जो बातें जैसी होनी चाहिए, उस समय वे उसी प्रकार हो जाएँगी । आज उनके विषय में कुछ कहने की क्या आवश्यकता है ? भीष्मकराज मुझ पर आप विश्वास रखते हैं न ? क्या आप यह सोचते हैं कि मैं कोई अन्याय करूँगा ?*

भीष्मक : *मैं किसी पर कोई आरोप नहीं करना चाहता । मुझे केवल इतना ही देखना है कि राजकुल की प्रतिष्ठा*

को तनिक भी आँच न आये। और यदि ऐसा कुछ होता है—अप्रतिष्ठा होने की संभावना दिखाई देती है तो मैं यह स्वयंवर ही न होने दूँगा। (दण्डक आता है) क्यों रे दंडक, क्या है ?

दंडक : कैशिकराज पधारे हैं···

रुक्मी : क्या अकेले ही आए हैं ?

भीष्मक : जाओ, उन्हें ले आओ। उनके साथ कोई मेहमान हों तो उन्हें भी सम्मान के साथ ले आओ।

रुक्मी : नहीं···

भीष्मक : जाओ दंडक। हमारी आज्ञा का पालन करो।

रुक्मी : (जाते हुए दंडक को रोकने का प्रयत्न करता हुआ) नहीं, कैशिकराज को छोड़कर और किसी को भी यहाँ नहीं आने देना है।

जरासंध : जाओ दंडक, राजाज्ञा का पालन करो। (दंडक जाता है।) युवराज रुक्मी बैठ जाओ अपने आसन पर। इस काम का सारा उत्तरदायित्व मैंने अपने आप पर ले लिया है। यहाँ किसी का भी अपमान नहीं होना चाहिए। वह मेरे लिए कलंक होगा। यह स्वयंवर का मंडप नहीं, एक गृहस्थ का घर है। यहाँ अतिथि का अपमान कैसे हो सकता है ?

(आगे कैशिकराज, उनके पीछे गर्ग मुनि और सब के पीछे कृष्ण प्रवेश करते हैं। भीष्मक उठकर आगे बढ़ते हैं और कैशिकराज को अपने आसन पर बिठाते हैं। फिर कृष्ण और गर्ग मुनि को लिये एक रिक्त आसन

की ओर जाते हैं। गर्ग मुनि आसन पर बैठते हैं। कृष्ण खड़े रहते हैं। भीष्मक को छोड़कर और कोई भी खड़े होकर अतिथियों का स्वागत नहीं करता। क्षण-भर के लिए सब स्तब्ध रहते हैं।)

कैशिक : *भीष्मक, हमारे आगमन से तुम लोगों के कार्य में कोई बाधा तो नहीं आई ?*

भीष्मक : *नहीं महाराज, आप अपने 'ही घर आए हैं। यहाँ ये सभी अतिथि हैं। मेरा अधिकार अब समाप्त हो गया है।*

रुक्मी : *यह ग्वालों का गुंडा यहाँ क्यों आया ?* (क्षण-भर के लिए सब चुप रहते हैं।) *मेरे इस प्रश्न का उत्तर कौन देगा ? पितामह, क्या आप नहीं जानते कि मगधाधिपति जरासंध यहाँ उपस्थित हैं ?*

कैशिक : *हाँ, मैं देख रहा हूँ।*

रुक्मी : *फिर यह ग्वाला यहाँ क्यों आया ?*

कैशिक : *यह ग्वाला नहीं। यादव है—शूर है—योद्धा है···*

रुक्मी : *मामूली सैनिक है···*

कैशिक : *हाँ, मामूली सैनिक है। पर इस मामूली सैनिक ने बड़े-बड़े पराक्रमी वीरों को अनेक बार धूल चटा दी है···*

रुक्मी : *मेरे अतिथि का यह अपमान हो रहा है।*

कैशिक : *जो सत्य है, मैं वही कह रहा हूँ। मैं किसी का भी अपमान नहीं करना चाहता।*

रुक्मी : *राजा जरासंध का बैरी मेरा भी बैरी है।*

कैशिक : *विदर्भ नगर का मित्र किसी का भी बैरी नहीं—और विदर्भ का तो है ही नहीं।*

भीष्मक : *विदर्भ और कुंडिनपुर दो नहीं हैं। विदर्भ का मित्र हमारा भी मित्र ही है। श्रीकृष्ण, खड़े क्यों हो? आसन ग्रहण करो न?*

कृष्ण : *जब गुरुजन सामने उपस्थित हों, तब उनका सम्मान किस तरह रखना चाहिए, यादवकुलोत्पन्न इसे अच्छी तरह जानते हैं। मेरा स्थान कहाँ है यह मुझे मालूम है। आप आसन पर विराजें, भीष्मक-राज!*

रुक्मी : *अतुल पराक्रमी राजा जरासंध के सामने आसन पर बैठने की क्या हिम्मत है इस ग्वाले की?*

(भीष्मकराज आसन पर बैठते हैं और उसके बाद श्री कृष्ण भी आसन पर बैठ जाते हैं।)

रुक्मी : *लो देखो, देख लो इन यादवों के ये शिष्टाचार!*

कैशिक : *इसमें भूल कहाँ हुई?*

रुक्मी : *देखा नहीं आपने! शिष्टाचार की शेखी बघारे अभी एक क्षण भी नहीं हुआ, और यह ग्वाला...*

कैशिक : *जबान सम्हालकर बोलो रुक्मी! इस विदर्भ में जब तक मैं विद्यमान हूँ, तब तक किसी का भी अत्याचार सहन न करूँगा। मेरे अतिथि का अपमान न होना चाहिए।*

रुक्मी : *हमारे अतिथि का भी अपमान न होना चाहिए।*

कैशिक : *मुझे आज्ञा देने का किसी को अधिकार नहीं। सभी मेरे अतिथि हैं। यहाँ किसी का भी अपमान न होगा।*

शाल्व : *झगड़े की नींव पर स्वयंवर खड़ा हो रहा है। और अभी स्वयंवर का तो यह सूत्रपात ही हुआ है। कृष्ण के आगमन के कारण यह स्वयंवर अब निश्चित ही भंग होगा।*

जरासंध : *शाल्वराज, हम लोग मेहमान हैं, यह न भूलो। यजमान का आदर करना मेहमानों का भी कर्तव्य है।* (क्षण-भर के लिए सर्वत्र स्तब्धता)

भीष्मक : *महर्षि गर्ग मुने, आप सकुशल तो हैं! मथुरा में सब कुशल हैं न?*

गर्ग मुनि : *सब कुशल हैं। भीष्मक, आप सब कुशल हैं न?*

भीष्मक : *मुनिवर्य के आशीर्वाद से हम सब कुशल हैं।*
(फिर क्षण-भर के लिए स्तब्धता)

गर्ग मुनि : *भीष्मक, इस स्वयंवर में श्रीकृष्ण भाग नहीं लेना चाहता था। लेकिन तुम्हारी रुक्मिणी के लिए कृष्ण जैसा दूसरा योग्य वर नहीं*··· (रुक्मी एकदम उठता है। कैशिकराज हाथ के संकेत से उसे बैठने को कहते हैं।) *कृष्ण जैसा दूसरा वर नहीं, ऐसा मैंने सोचा और इसीलिए मैं उसे अपने साथ यहाँ ले आया। वह यहाँ मेरी आज्ञा से ही आया है। यहाँ का सब हाल भी जानना ही था इसलिए मैं पहले तुम्हारे*

पिता के पास गया। मैंने सोचा कि यदि तुम्हारे पिता के अतिथि के रूप में हम यहाँ आवेंगे तो हमें अपमानित होने का अवसर न आएगा...

भीष्मक : मैं किसी का भी अपमान नहीं होने दूँगा।

गर्ग मुनि : अपमान प्रत्यक्ष भले ही न हुआ हो, पर अपमान की नींव तो पड़ ही गयी है। ऐसा न होना चाहिए था। इस स्वयंवर में आमंत्रित राजाओं से श्रीकृष्ण किसी भी तरह कम नहीं। कंस जैसे वीर को उसने सिर्फ बाहु-युद्ध में ही परास्त कर दिया था।

रुक्मी : उसकी जान ले ली...उसकी हत्या कर डाली। जरा-संध के दामाद का हत्यारा कौन-सा मुँह लेकर इस सभामंडप में आया है ?

कैशिक : राजा जरासंध मगधाधिपति हो सकते हैं, पर वे विदर्भाधिपति नहीं हैं। विदर्भ में श्रीकृष्ण पर प्रतिबन्ध लगाने का किसी को भी अधिकार नहीं।

शाल्व : इस हालत में अब युद्ध अवश्यंभावी है। युद्ध के बिना इस विवाद का अंत न होगा।

श्रीकृष्ण : (खड़े होकर) हे नृपश्रेष्ठ, व्यर्थ ही भय का वातावरण निर्मित न कीजिए। युद्ध का नाम क्यों ले रहे हैं ? युद्ध से मैं घृणा करता हूँ। संसार से युद्धों को समाप्त कर दूँ, यही मेरी टेक है।

शाल्व : कंस से युद्ध किसने किया था ? राजा जरासंध से युद्ध किसने किया था ?

श्रीकृष्ण : कौन कहता है कि कंस से मैंने युद्ध किया ? क्या मैंने

कभी कंस को छेड़ा था? गोकुल के गरीब ग्वालों को कंस ने खूब तंग किया···वह युद्ध करने का मौका था···लेकिन हम मात्र प्रतिकार करके ही चुप बैठ गए। कंस ने जानबूझ कर मुझे अपने यहाँ बुलवा भेजा। धोखे से मेरे प्राण लेने का उसने षड्यंत्र रचा। आत्म-रक्षा के लिए मुझे उसका प्रतिकार करना पड़ा और इसी में वह मारा गया। दो मल्लों का बाहु-युद्ध था वह। वह युद्ध नहीं था। वहाँ रथी नहीं थे···महारथी नहीं थे···सेना से सेना नहीं लड़ी थी। और जरासंध से भी मैंने कहाँ युद्ध किया था? मथुरा पर आक्रमण करने वाले जरासंध का बार-बार जो हमने प्रतिकार किया, वह हम दोनों भाइयों ने मात्र अपने बाहुबल से ही। युद्ध टालने के लिए हम दोनों ने गोमंत पर्वत का आश्रय लिया था। हम दो युवकों का बदला चुकाने के लिए जरासंध ने इक्कीस अक्षहौणी सेना के साथ हम पर धावा बोल दिया। लेकिन उस युद्ध में क्या एक भी सैनिक के प्राण गए? वहाँ भी हमने जरासंध को अपने बाहुबल से ही हराया। दो व्यक्तियों की शत्रुता के लिए असंख्य निरपराध जीवों का संहार हो, यह मुझे बिल्कुल स्वीकार नहीं। युद्ध का जब-जब भी प्रसंग आया है, तब-तब मैंने उसे टाला है और जब तक मेरे तन में प्राण हैं तब तक मैं कहीं भी कोई युद्ध न होने दूँगा। मेरी यह दृढ़ प्रतिज्ञा है कि किसी एक व्यक्ति की प्रतिष्ठा के लिए मैं कभी नर-संहार नहीं होने दूँगा। नृपश्रेष्ठ, यह

स्वयंवर है—मंगल कार्य है—इस मंगल कार्य के आरंभ में अमंगलकारी युद्ध का नाम भी न लीजिए।

रुक्मी : युद्ध से कायर ही डरते हैं। हम वीरों को युद्ध का भय नहीं।

जरासध : शान्त होओ रुक्मी। नृपश्रेष्ठ, यह स्वयंवर-मंडप नहीं है। स्वयंवर-मंडप में आने के लिए कौन पात्र है, यह निश्चित करने का यह समय नहीं। फिर भी मैं कहता हूँ कि उस स्वयंवर में सम्मिलित होने का अधिकार केवल सिंहासनाधिष्ठित राजाओं को ही है। फिर यह व्यर्थ का विवाद क्यों ?

कैशिक : तब तो श्रीकृष्ण को इस स्वयंवर में भाग लेने का पूर्ण अधिकार है।

जरासंध : किस राज्य का राजा है यह ?

कैशिक : विदर्भ का।

(जरासध कृष्ण के मस्तक का मुकुट देखकर चौंकता है।)

रुक्मी : (तड़ाक से उठकर) विदर्भ का ?

कैशिक : हाँ, मैंने अपना राज्य श्रीकृष्ण को अर्पण कर दिया है। अपने राजसिहासन पर उसको आसीन करने के बाद ही मैं उसे यहाँ लाया हूँ। रुक्मिणी के स्वयंवर में सम्मिलित होने का विदर्भाधिपति श्रीकृष्ण को पूर्ण अधिकार है।

भीष्मक : कितने महान संकट से आपने मुझे मुक्त कर दिया !"

(कैशिकराज के चरणों में मस्तक रख देता है।)

कौशिक : *उठो भीष्मक। इस में मैंने क्या किया? केवल अपने कुल की प्रतिष्ठा बचाई। अपनी संतान के कल्याण के लिए यदि मैं बड़े से बड़ा स्वार्थ-त्याग करने के लिए प्रस्तुत न होता तो तुम लोगों का गुरुजन कैसा?*

रुक्मी : *जब हमारे ही आत्मीय हमारा गला काटने लगें, तब दोष किसे दें? राजा जरासंध, क्या आप को यह निर्णय स्वीकार है?*

कौशिक : *मेरे राज्य में मेरे विरुद्ध निर्णय देने का किसी को अधिकार नहीं।*

जरासंध : *आप ठीक कहते हैं। जहाँ राजा कैशिक ही अपने राज्य का विसर्जन करने को स्वयं तैयार हो गए, वहाँ उन्हें इससे रोकने वाले हम कौन होते है युवराज रुक्मी! ऐसी परिस्थिति में क्या यह स्वयंवर आवश्यक है?*

रुक्मी : *नहीं,—बिल्कुल नहीं। स्वयंवर के लिए जो राजा आए हैं, उन्हें सम्मानपूर्वक विदा देने के सिवा अब कोई काम नहीं बचा। चलिए, हमारा काम हो चुका। रुक्मिणी! का स्वयंवर भंग हो गया।*

कौशिक : *रुक्मिणी का स्वयंवर भंग हो गया। अब इसके आगे जो होगा, वह होगा रुक्मिणी का कन्यादान चलिए। गर्ग मुने, चलो श्रीकृष्ण—हमारा काम हो गया। भीष्मक, अपने इन अतिथियों का यथोचित सम्मान करने के लिए तुम इन्हें अपने साथ ले चलो। चलिए अतिथि महाशय।*

[सब उठते हैं। गर्ग मुनि और श्रीकृष्ण के हाथ पकड़े

हुए भीष्मक कैशिक राज के साथ चले जाते हैं। जरासंध उठकर जाने लगता है। त्योंही रुक्मी और शाल्व आदि भी उसके पीछे-पीछे जाने लगते हैं। सब चले जाते हैं। लेकिन तुरंत ही जरासंध रुक्मी का हाथ पकड़े हुए फिर लौट आता है।]

जरासंध : *शाल्वराज, इधर आओ।* [शाल्व आता है। उसके पीछे दन्तवक्त्र आड़ में खड़ा है।]

शाल्व : *अब और क्या रह गया है ? अभी तक जितनी फजीहत हुई क्या वह काफी नहीं हुई ? अब हम शिशुपाल के पास कौन-सा मुँह लेकर जाएँ ?*

जरासंध : *इसी बात पर तो आ रहा हूँ मैं। तुम भूल रहे हो, शाल्वराज। यह स्वयंवर भंग हुआ है सिर्फ आज के लिए ही। कैशिकराज ने कहा वही सच है—अब स्वयंवर नहीं—अब कन्यादान होगा। रुक्मिणी शिशुपाल की रानी होगी।*

रुक्मी : *कृष्ण के जीवित रहते हुए ?*

जरासंध : *कृष्ण का अवतार समाप्त हो गया। कृष्ण के अवतार को समाप्त करने का मार्ग मुझे कृष्ण ने ही दिखा दिया।*

रुक्मी : *मतलब ?*

जरासंध : *कृष्ण के साथ कौन आया था ?*

रुक्मी : *कृष्ण के साथ कौन आया था ? गर्ग मुनि को छोड़कर और कौन आया था उनके साथ !*

जरासंध : उन्हीं ने—उन्हीं मुनि महाराज ने—मुझे वह मार्ग दिखा दिया है।

शाल्व : क्या कह रहे हो? कृष्ण की हत्या करने का उपाय गर्ग मुनि ने बता दिया?

जरासंध : (हँसकर) हाँ!

शाल्व : बड़े आश्चर्य की बात है। परन्तु तुम्हारी तो उनसे कोई बात तक नहीं हुई थी।

जरासंध : गर्ग मुनि महा तपस्वी हैं—महान दार्शनिक हैं। उनके दर्शन मात्र से ही मेरा काम हो गया।

रुक्मी : काम हो गया अर्थात् क्या हो गया?

जरासंध : गर्ग मुनि के पुत्र को तुम पहचानते हो?

रुक्मी : गर्ग मुनि का पुत्र? कौन है गर्ग मुनि का पुत्र?

जरासंध : मथुरा के वृष्णी और अन्धकों ने गर्ग मुनि का अपमान किया था। उन्हें दंड देने के लिए गर्ग मुनि ने घोर तपस्या की और वरदान में एक पुत्र मांग लिया जो मथुरा के लिए अजेय सिद्ध हो। यहाँ किसी को भी इसकी कोई खबर न थी। बर्बर देश के राजा ने इस प्रसङ्ग से लाभ उठाकर अपनी कन्या गर्ग मुनि को अर्पण कर दी। उससे जो पुत्र हुआ वह है कालयवन और वही आज बर्बर देश का राजा है। शङ्कर के वरदान से वह मथुरा के लिए अजेय है—अवध्य है। हमें उससे संधि करनी चाहिए। गर्गाचार्य जी के अस्त्र से उन्हीं पर आघात करना चाहिए। (आड़ में खड़ा हुआ दंतवक्त्र चुपचाप खिसक जाता है।)

शाल्व : *हाँ, अब समझा। कालयवन द्वारा मथुरा पर च करा देना, और प्रजा में यह ढिंढोरा पीटना कि मुनि ही उसे वहाँ बुलाकर ले आए हैं,— यही न?*

जरासंध : *क्यों रुक्मी, आया समझ में? तुम्हारी बात व्यर्थ जाएगी। जहाँ कालयवन ने कृष्ण का काम त किया कि फिर शिशुपाल को रुक्मिणी के साथ वि करने से कौन रोक सकता है?*

रुक्मी : *अब मुझे संतोष हुआ। मैं ही चला जाता हूँ क यवन के पास···*

जरासंध : *नहीं। शाल्वराज, मेरा आज्ञा-पत्र लेकर कालयव पास जाने का दायित्व मैं तुम्हें सौंपता हूँ। इस का रुक्मी का बीच में आना ठीक नहीं, समझ गए?*

शाल्व : *अजीब है राजा जरासंध का बुद्धि-कौशल्य! मगधाधिपति—जय!*

(परदा गिरता है।)

दूसरा अंक

पहला दृश्य

[बलराम का अन्तःपुर । रेवती और अश्विनी । रेवती आसनास्थ है और अश्विनी बीच-बीच में द्वार की ओर जाकर झाँककर देखती है ।]

अश्विनी : *अभी तक किसी का भी पता नहीं । मैंने सुना कि कोई दूतिका कुंडिनपुर से सँदेशा लेकर आई है इसलिए मैं दौड़ती आई । परन्तु यहाँ देखती हूँ तो कोई नहीं ।*

रेवती : *पहले सास जी के घर जाकर पूछना था । यदि कोई आएगी भी तो पहले वहाँ जाएगी या यहाँ आएगी ? कम-से-कम तुम तो इतना समझ सकती थीं ननद जी !*

अश्विनी : *पहले मैं वहीं तो गयी थी । जब देवकी माता ने यह सुना तो वे भी अस्वस्थ हो गईं । वहाँ कोई न था इसलिए फिर यहाँ आई । यदि यह पता चलता कि कोई दूत आया है तो फिर इस झंझट में ही न पड़ती । क्योंकि यदि कोई दूत आता तो सीधा राजसभा में जाता । पर पता लगा कि दूतिका आई है । आश्चर्य है कि कुंडिनपुर वालों ने दूत न भेज कर दूतिका भेजी—ऐसा क्यों ?*

रेवती : मुझे भी यही अचरज होता है। पर कोई दूतिका क्या सचमुच आई है ? किसने कहा तुमसे ?

अश्विनी : यही तो एक रहस्य है। किसी एक ने दूसरे से कहा, उस दूसरे ने किसी तीसरे से कहा, और फिर वह तीसरा सब जगह कहता फिरा। सभी कह रहे हैं कि दूतिका आई है। यदि वह सचमुच आई है तो आखिर है कहाँ ? इतने शीघ्र कहाँ और कैसे विलुप्त हो गई ?

रेवती : मैं बताती हूँ तुम्हें। न कोई आया है और न कोई विलुप्त हुआ है। कुण्डिनपुर के समाचार सुनने को सब लोग आतुर हो गए हैं इसलिए हर कोई अपनी-अपनी हाँक रहा है। और कोई बात नहीं। व्यर्थ ही क्यों घबड़ा रही हैं आप ? यदि कोई आया तो कौन छिपा रहेगा—हमें मालूम हो ही जायगा।

अश्विनी : मन नहीं मानता न भाभी ? यह यादवों की प्रतिष्ठा का प्रश्न है इसलिए चिन्ता होती है। कम-से-कम कृष्ण को तो कुछ समाचार भेज देना था—और गर्ग मुनि क्या कर रहे हैं ? वे तो जेठे-सयाने हैं। कम-से-कम उनके ध्यान में यह कैसे नहीं आया कि इधर हमें चिन्ता हो रही होगी ?

रेवती : उनके ध्यान में अवश्य होगा, पर वे क्या कर सकते हैं ? साथ में एक सेवक भी तो नहीं ले गए। जब स्वयंवर में गए हैं तो जरा ठाट-बाट से जाना था—पर दोनों रथ में बैठे और चल दिये—अपने साथ सारथी को भी तो नहीं ले गये।

अश्विनी : *कृष्ण को गाड़ी हाँकने का शौक जो है ? जन्म से ही तो उसकी यह दरिद्री वृत्ति है—ग्वालों में जो बढ़ा है न ? ढोर हाँकते-हाँकते गाँड़ियाँ हाँकने लगा ! यदि अन्त तक गाड़ियाँ ही हाँकता रहा तो लोगों में उसकी क्या प्रतिष्ठा रहेगी ? अभिमान तो उसमें कूट-कूट कर भरा है परन्तु सारे लक्षण हैं दरिद्रता के।*

(बलराम ताव से प्रवेश करता है।)

बलराम : *कौन आया है ?*

रेवती : (उसके पास जाकर) *कहाँ कौन आया है ? कहाँ से आया है ?*

बलराम : *हर कोई एक दूसरे से पूछ रहा है···क्या कोई दूतिका आई है ? कहते हैं कुण्डिनपुर से आई है।*

अश्विनी : *अब सुनो भाभी !*

बलराम : *क्या सुनो ?*

अश्विनी : *मैं भी यही पूछ रही थी भाभी से। हर व्यक्ति पूछ रहा है—कुंडिनपुर से जो दूतिका आई है वह गयी कहाँ ?*

बलराम : *और मैं भी तो वही पूछ रहा हूँ—कुण्डिनपुर से जो दूतिका आई है वह गयी कहाँ ?*

रेवती : *पूछ सब रहे हैं परन्तु उत्तर कोई नहीं देता। प्रत्येक व्यक्ति यदि प्रत्येक से पूछता ही रहे तो उत्तर कौन देगा ?*

बलराम : *मुझे तो लोगों का यह षड्यन्त्र मालूम होता है।*

कोई भी समाचार फैला देना और मुझे हैरान करना। क्योंकि मैं निरन्तर कुछ न कुछ पूछताछ करता रहता हूँ। और यदि मुझे कुछ मालूम न हुआ तो फिर मैं चिढ़ जो जाता हूँ न।

रेवती : तो फिर न चिढ़ा करें।

बलराम : चिढ़ूँगा क्यों नहीं। जब चिढ़ आने लायक बातें होने लगें, तो किसी को भी चिढ़ आ जाएगी। मैं ही क्यों—कोई भी चिढ़ जायगा। जब से ये दोनों गए हैं, तब से मेरे मन में खटका लगा हुआ है। मैं ने कहा था कि मैं भी साथ चलता हूँ तो मुझे अपने साथ न लिया—रात-दिन तड़प रहा हूँ अब। कहीं से भी कोई समाचार प्राप्त नहीं हो रहा है। मुझे लगता है कि वहाँ कुछ-न-कुछ घुटाला अवश्य हो गया है, इसमें सन्देह नहीं।

रेवती : घुटाला क्या होगा? वे लोग विदर्भ नगर में राजा कैशिक के यहाँ गए हैं। अभी हमें यह कहाँ मालूम हुआ है कि वे कुण्डिनपुर पहुँच गए हैं?

अश्विनी : यह मालूम होने की क्या आवश्यकता? कुण्डिनपुर जाना तो यहीं निश्चित हो चुका था···

बलराम : जो बातें निश्चित हो चुकती हैं, वे हो ही जाती हैं यह तुम से किसने कहा? मुझे लगता है कि वे कुण्डिनपुर गए ही नहीं हैं। उधर जरासंध ने अपना षड्यंत्र पूरा कर लिया होगा। सम्भवतः रुक्मिणी का स्वयंवर भी हो चुका होगा। और

लोग बैठे होंगे विदर्भ में ही राजा कैशिक के राजसी आतिथ्य का उपभोग करते हुए। विदर्भ के लोग आतिथ्य-सत्कार में बड़े निपुण होते हैं। ये दोनों भी एक से ही हैं! एक निरा बूढ़ा तो दूसरा बिल्कुल छोकरा। उनकी मीठी-मीठी बातों पर मोहित हो गए होंगे और बैठे मजा उड़ा रहे होंगे। कैशिक-राज पर भी विश्वास कैसे करें? कुछ भी हो, वह भीष्मक का पिता है। वह उन्हें उधर झुलाता रहा होगा और इधर स्वयंवर सम्पन्न भी हो गया होगा।

रेवती : भला कहीं ऐसा हो सकता है ?! कैशिकराज यदि वैसे होते तो क्या वे भीष्मक को अपने से विलग कर देते ?

बलराम : अजी, यह सब स्वार्थ के लिए किया गया है ? जहाँ स्वयं अपना प्रश्न होता है, वहाँ मनुष्य बड़ा न्यायी हो जाता है। परन्तु जब दूसरे का प्रश्न खड़ा हो जाता है तो फिर हृदय में स्वजनों का मोह जाग्रत हो जाता है। यह मनुष्य-स्वभाव है और यही हुआ होगा वहाँ।

अश्विनी : इन तर्क-वितर्कों की क्या आवश्यकता है दादा ? कृष्ण कभी न कभी तो आएगा ही। वह कोई वहीं सदा के लिए रहने को तो गया नहीं है ? तो फिर इन व्यर्थ की बातों को सोचकर अपना मन अस्वस्थ क्यों करते हो ?

रेवती : *अब कह रही हो ऐसा, ननद जी ! लेकिन अभी-अभी कौन छटपटा रहा था दूतिका की खोज में ?*

अश्विनी : *कुछ भी हो, आखिर हम हैं औरतें—हम तो छट-पटाएँगी ही। दादा ठहरे पुरुष, राजतिलक भले ही न हुआ हो, पर मथुरा के राजा हैं वे—ऐसा उतावलापन, कम-से-कम राजा को तो शोभा नहीं देता।*

बलराम : *कौन कहता है कि मैं राजा हूँ। मैं राजा नहीं हूँ, सुना अश्विनी ! मैं सेनापति हूँ मथुरा का। मैं जो छटपटा रहा हूँ सो इसलिए नहीं कि राजा हूँ या कि सेनापति हूँ—मैं बेचैन हो रहा हूँ यादव-कुल की प्रतिष्ठा के लिए। यदि उस प्रतिष्ठा पर संकट आ गया तो फिर मुझे प्राणों पर ही खेलना होगा। मैंने युद्धभूमि में तो जरासंध को सत्रह बार परा-जित कर भगा दिया—लेकिन इस पारवारिक षड्यन्त्र में उसने यदि हमें पराभूत कर दिया, तो हमें संसार में मुँह दिखाने को भी कहीं स्थान न रहेगा। भूल मुझसे ही हो गई। कृष्ण के साथ मुझे ही जाना चाहिए था।*

रेवती : *पर गर्ग मुनि तो साथ हैं न ? उन्हें भी तो यादव-कुल का अभिमान है।*

बलराम : *यादवों का अभिमान यादवों को होगा। राजगुरु को क्या पड़ी है जी ? वे केवल अपने को ही देखेंगे। उनको सदा अपनी ही प्रतिष्ठा का ध्यान रहेगा। वृष्णि*

और अंधक पर चिढ़कर मथुरा छोड़ आखिर चले ही गए थे न वे ? उस समय कहाँ गया था यादव-कुल का अभिमान ?

रेवती : *सच ? क्या वे क्रोधित होकर चले गए थे ?*

बलराम : *हाँ, सिर्फ क्रोधावेश में चले गए थे। मथुरा के विनाश के लिए फिर उन्होंने घोर तपस्या की। शङ्कर जी से यह वरदान माँगा कि मुझे ऐसा पुत्र दो जो मथुरा के लिए अवध्य हो और मथुरा पर विजय प्राप्त करे।*

रेवती : *फिर उनके वैसा कोई पुत्र हुआ क्या ?*

बलराम : *वरदान माँगने के लिए भी बुद्धि चाहिए। वे ब्रह्मचारी थे, उनके पुत्र कहाँ से होता ? परन्तु यह सच है कि मनुष्य के स्वभाव का पता उसके बर्ताव से चल जाता है। वे मथुरा के राजगुरु थे। फिर उनके मन में यह विचार ही कैसे आया कि मथुरा का विध्वंस हो ? कोई यादव क्या कभी ऐसा सोचता ?*

अश्विनी : *क्या यह सब सच है, दादा ? मैं नहीं जानती थी।*

बलराम : *तुम कैसे जान सकती हो ? ये बहुत पुरानी बातें हैं। उग्रसेन महाराज का भी जन्म नहीं हुआ था उस समय। आज ऐसी परिस्थिति है। इसीलिए मैं चिन्तित हो रहा हूँ। अब कुंडिनपुर से यदि कोई न आया…*

सेवक : (प्रवेश करके) *कुंडिनपुर से एक दूतिका आई है महाराज !*

अश्विनी : *तो सचमुच ही आई है !*

रेवती : *आखिर आई तो !*

बलराम : *जाओ। उसे शीघ्र भेज दो भीतर।*

सेवक : *जो आज्ञा महाराज !* (जाता है।)

बलराम : *अब जाने यह और क्या समाचार लेकर आई है? प्राण जैसे मेरी आँखों में आकर सिमट गए हैं?*

अश्विनी : *और मुझ से तुम झूठ कह रहे थे?—देखो अब आई कि नहीं?*

रेवती : *पर यह दूती क्यों आई? क्या उनके पास यहाँ भेजने को कोई योग्य पुरुष नहीं था?*

(सुनीता आती है और बलराम के चरणों पर मस्तक रख कर प्रणाम करती है।)

सुनीता : *मथुराधिपति की जय हो !*

बलराम : *मैं मथुराधिपति नहीं हूँ—समझी? मैं मथुराधिपति नहीं। मथुराधिपति राजा उग्रसेन हैं। यदि मथुराधिपति से मिलना है···कौन है रे उधर?···इसे उग्रसेन महाराज के पास ले जाओ।* (सेवक आता है।) *इसे उग्रसेन महाराज के सामने उपस्थित करो।*

रेवती : (सेवक से) *तू जा रे।* (सेवक जाने लगता है।)

बलराम : *मेरी आज्ञा का पालन कर। यह मथुराधिपति के पास आई है···इसे मथुराधिपति के पास पहुँचा दे।*

अश्विनी : *परन्तु वह क्या कहती है, कम-से-कम यह तो सुन लो।*

बलराम : *मैं नहीं सुनना चाहता। वहाँ का समाचार वहीं*

जाने दो । कुंडिनपुर का समाचार न मिलने से मेरे कोई प्राण नहीं निकल जाएँगे । ले जा रे इसे महाराज के पास ।

रेवती : जरा ठहरो···तुम कौन तो ? किस के पास आई हो ?

सुनीता : मुझे क्षमा कीजिए । हम विदर्भ के सीधे-सादे लोग हैं । यहाँ के आचार-विचारों से परिचित नहीं । मुझे क्षमा कीजिए । मैं कुंडिनपुर की दासी हूँ । महाराज के लिए सँदेशा लेकर आई हूँ ।

बलराम : कौन-से महाराज के लिए ?

सुनीता : श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम महाराज के लिए ।

अश्विनी : लो सुनो अब···सेवक, तुम जाओ ।

सेवक : महाराज, मैं जाऊँ ?

अश्विनी : मैं कहती हूँ जाओ ।

बलराम : अच्छा-अच्छा, जा (सेवक प्रणाम करके चला जाता है ।) कुंडिनपुर की दूतिका क्या तू ही है ?

सुनीता : हाँ महाराज ।

बलराम : फिर थी कहाँ अभी तक ? तेरे आने का समाचार तो हमें बहुत पहले मिल चुका था—फिर तू कहाँ भटक रही थी अभी तक ?

सुनीता : क्षमा कीजिए महाराज ! यहाँ का कारोबार देखकर मैं बिचक गयी । पहले पहुँची उग्रसेन महाराज के पास···

अश्विनी : अब सुनो···

बलराम : *तुम चुप रहो। हाँ, फिर क्या कहा उन्होंने ?*

सुनीता : *उन्होंने भेज दिया मुझे वासुदेव महाराज के पास···*

अश्विनी : *और उन्होंने भेज दिया तुम्हें इधर बलराम महाराज के पास···यही न ?*

सुनीता : *सेवक मुझे यहाँ ले आया···*

बलराम : *फिर तूने वहाँ का सँदेशा कहा था उनसे ?*

सुनीता : *कैसे कहती ? मुझे समाचार देना था बलराम महाराज को। फिर दूसरों से वह मैं कैसे कह देती ?*

रेवती : *क्या वह समाचार इतना गुप्त है ?*

अश्विनी : *यदि हम दोनों यहाँ रहें, तो कोई आपत्ति तो नहीं ? या कि हम भी यहाँ से चले जाएँ ?*

सुनीता : *यह मैं कैसे कहूँ ? समाचार देना है बलराम महाराज को···मुझ से कहा गया है कि मैं वह समाचार और किसी को न दूँ···*

अश्विनी : *किसने कहा ? भीष्मकराज ने ?*

सुनीता : *जी नहीं। दन्तवक्त्र महाराज ने।*

बलराम : *दन्तवक्त्र ने मुझे समाचार भेजा है ? आश्चर्य है !*

रेवती : *तू तो कुण्डिनपुर के राजप्रासाद की दासी है न ? यहाँ किसकी अनुमति से आई है ?*

सुनीता : *महाराज ने ही मुझे भेजा है···*

रेवती : *लेकिन समाचार तो ला रही है दन्तवक्त्र का।*

सुनीता : *परन्तु महाराज की अनुमति से ही। महाराज ने मुझे*

आज्ञा दी कि दन्तवक्त्र का समाचार मथुरा जाकर बलराम महाराज को दे आओ।

बलराम : *यह कैसा घुटाला है? तू दासी है कुण्डिनपुर की, समाचार लायी है दन्तवक्त्र का, और तुझे भेजा है भीष्मकराज ने···महान आश्चर्य है। सीधे भीष्मकराज ने ही समाचार क्यों नहीं भेज दिया? इस में दन्त वक्त्र के माध्यम की क्या आवश्यकता थी?*

अश्विनी : *पर समाचार क्या है, यह तो कम-से-कम सुन लो पहले।*

रेवती : *हम यहीं रहें तो कोई आपत्ति तो नहीं?*

बलराम : *मेरे सामने एक बड़ा प्रश्न उपस्थित हो गया है। समाचार तो मालूम होना चाहिए···और तुम दोनों कोई परायी नहीं हो...*

अश्विनी : *और यदि कोई गुप्त बात भी हो, तो तुम्हारे मुँह में वह कब तक गुप्त बनी रहेगी, दादा!*

बलराम : *हाँ, यह भी तो सच ही है! किसी भी बात को मैं गुप्त नहीं रख सकता। दन्तवक्त्र को यह मालूम होना चाहिए था। अच्छा,···अपना क्या नाम बताया था? तूने अब जो कहना चाहती है, कह।*

सुनीता : *कैसे कहूँ महाराज? मुझे जो आज्ञा मिली है वह मैं आपसे निवेदन कर चुकी हूँ। मुझे समाचार देना है केवल बलराम महाराज को।*

बलराम : *मैं ही हूँ बलराम महाराज। यह है मेरी पत्नी—*

यह है मेरी बहिन । कैसी भी गुप्त बात क्यों न हो, मैं इनसे नहीं छिपाता । बोल, कह जल्दी…

सुनीता : परन्तु मुझे तो आज्ञा दी गयी है…

बलराम : क्या आज्ञा दी है तुझे ? जो मैं कहता हूँ वह सुन । मेरी आज्ञा का पालन कर और यदि उसका पालन नहीं करना है, तो यहाँ से रास्ता नाप । अवज्ञा करने वाले लोग मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं । (रेवती और अश्विनी हँसती हैं ।) हँसती क्या हो ? कृष्ण से भी मैं यही कहा करता हूँ । अवज्ञा करने वाले व्यक्ति पर मुझे क्रोध आता है । हाँ, तो झटपट कह डाल ।

सुनीता : बड़ी आफत है । हम हैं विदर्भ के । ऐसी कोई बात पट हमारी समझ में ही नहीं आती !

रेवती : देख, विदर्भ के नियम यहाँ नहीं चलेंगे । यह मथुरा है । मथुरा में मथुरा के नियमों के अनुसार ही बर्ताव करना होगा । जो कहना चाहती है, सो तुरन्त कह दे ।

सुनीता : मुझे क्या करना है ? सुनिए—दन्तवक्त्र महाराज ने कहा है कि स्वयंवर भङ्ग हो गया…

रेवती : स्वयंवर भङ्ग हो गया !

अश्विनी : स्वयंवर भङ्ग हो गया !

बलराम : क्या कहती है ? स्वयंवर भङ्ग हो गया ? क्यों भङ्ग हो गया स्वयंवर !

सुनीता : बात यह हुई महाराज, कि कैशिकराज ने श्रीकृष्ण को विदर्भ के सिहासन पर बैठा दिया···

बलराम : क्या कहती है ?

सुनीता : कहना क्या है ? विदर्भ के राजा होकर जब श्रीकृष्ण कुण्डिनपुर पहुँचे तब सब के चेहरे काले पड़ गए। जरासंध के सारे मनसूबे धूल में मिल गए। उनका षड्यन्त्र यह था कि कृष्ण का अपमान करके उन्हें भगा देना और रुक्मिणी से बलात् शिशुपाल के गले में माला डलवा देना। जब उनकी यह चाल न चल पायी तो उनने स्वयंवर भङ्ग होने की ही घोषणा कर दी···

बलराम : बस, इतनी ही बात है न ? फिर इसमें गुप्त रखने योग्य ऐसी कौन-सी बात है ? यह तो सारे संसार को मालूम हो जायेगा कि स्वयंवर भङ्ग हो गया। इसे कहने में इतनी गुप्तता क्यों ?

रेवती : कैशिकराज ने बड़ी अच्छी युक्ति लड़ाई थी इसमें सन्देह नहीं।

बलराम : बड़ा घाघ है वह बूढ़ा। जरासंध ने अच्छी मुँहकी खायी।

सुनीता : परन्तु जरासंध महाराज ने एक और चाल चली है।

बलराम : उसमें भी मुँहकी खायेगा वह···

सुनीता : वह चाल बड़ी विलक्षण है। उसने कालयवन से सहायता लेने का निश्चय किया है···

रेवती : कौन है यह कालयवन ?

सुनीता : गर्ग मुनि का पुत्र !

बलराम : (चिल्लाकर) गर्ग मुनि का पुत्र ? इस ब्रह्मचारी के पुत्र कैसे हुआ ?

सुनीता : यह मैं कुछ भी नहीं जानती । दन्तवक्त्र महाराज ने मुझसे कहा कि गर्ग मुनि का पुत्र कालयवन, जो बर्बर देश का राजा है शङ्कर जी के वरदान से मथुरा के लिए अवध्य है । जरासंध महाराज उससे मथुरा पर चढ़ाई करवाएँगे ।

बलराम : गर्ग मुनि का पुत्र ? बर्बर देश का राजा कालयवन ? मथुरा के लिए अवध्य ? क्या यह सब सच होगा ? अभी-अभी ही जरासंध को इस कालयवन का पता कैसे चला ? सत्रह बार हार कर वह यहाँ से भागा, उस समय क्या वह इसे नहीं जानता था ? (क्षण भर के लिए रुककर) और क्या कहा है दन्तवक्त्र ने ?

सुनीता : बस, इतना ही । वे बोले मुझे ये बातें मालूम हुई हैं । तुम मथुरा जाकर इन्हें बलराम महाराज से कह आओ । इसके लिए जो भी प्रबन्ध उन्हें करना होगा, कर लेंगे ।

बलराम : अच्छा ? तो यह बात है ? ठीक है ! कौन है रे उधर ? (सेवक आता है ।) सुनीता को ले जाओ और उसका ठीक से सारा प्रबन्ध कर दो । यदि वह कुण्डिनपुर वापस जाना चाहती हो तो साथ में कुछ सैनिक देकर उसे वहाँ पहुँचा दो ।

("जो आज्ञा"-कहकर सेवक सुनीता को ले जाता है ।)

बलराम : *क्या यह सच होगा ? गर्ग मुनि ने शङ्कर से वरदान माँगा था यह बात सच है । परन्तु यह बर्बर देश का राजा कालयवन—यह यवन गर्ग मुनि का पुत्र कैसे हो गया ! और जरासंध को इसका पता इसी समय कैसे चला ? एक बड़ी समस्या ही खड़ी हो गयी है यह !*

(अस्वस्थ होकर टहलने लगता है ।)

रेवती : *कम-से-कम लाला ही लौट आते इस समय···*

अश्विनी : *क्या वहाँ कृष्ण को भी इसका पता चल गया होगा ?*

बलराम : *कृष्ण को कहाँ से पता चलेगा ? जरासंध का षड्-यन्त्र जरासंध के ही दल में रचा गया होगा । दन्त-वक्त्र को उसका पता चल गया—उन्हीं के दल में का है न वह ?—इसलिए उसने मुझे सूचित कर दिया···*

रेवती : *ऐसा क्यों किया उसने ? वहीं लाला से ही क्यों न कह दिया ?*

अश्विनी : *उसके साथ गर्ग मुनि जो थे न ?*

बलराम : *तो क्या तुम्हारा मतलब यह है कि इसीलिए नहीं कहा ? बड़ा आश्चर्य है । यदि इस समाचार का पता गर्ग मुनि को हो जाता तो उसमें हानि क्या थी ?*

रेवती : *मैं भी तो वही पूछना चाहती हूँ—वहाँ यदि गर्ग मुनि*

से यह सब कुछ कह दिया जाता तो क्या वे ही इसका कोई उपाय न सुझाते ?

बलराम : मेरे सामने तो यह एक बड़ी समस्या खड़ी हो गई है। दन्तवक्त्रने यह समाचार मुझे चुपचाप क्यों भेजा ? बड़ी संशयास्पद बात है यह। उसने मुझे सारा समाचार लिखकर क्यों नहीं भेजा ? मुखाग्र सँदेशा क्यों भेजा ? और वह भी एक दासी के द्वारा ! दासी ही के द्वारा क्यों ? आश्चर्य है ! कहीं जरासंध की ही तो यह चाल न हो ? कुछ भी हो, आखिर दन्तवक्त्र है उन्हीं के दल का—वैसे वह हमारा पक्ष अवश्य लेता है, परन्तु जरासंध ने हमें धोखा देने के विचार से कहीं उसे तो धोखा न दिया हो ? क्या हो गया यह ?

अश्विनी : कम-से-कम कृष्ण ही आ जाता···

बलराम : वह आकर क्या करता ? वहाँ उसे क्या पता चलेगा ? मुझे तो बड़ा संदेह होने लगा है।

रेवती : काहे का संदेह ?

बलराम : केवल संदेह ही हो यह बात नहीं। पर मन बड़ा बुरा होता है। कोई विकट प्रसङ्ग आ जाने पर मन में जाने कैसे-कैसे भले-बुरे विचार आने लगते हैं। ऐसा लगता है—(ठहरता है।)

रेवती : क्या लगता है ? कौन-सा विचार आ गया है आप के मन में ?

बलराम : लगता है तुम्हारे मन में भी इसी प्रकार का कोई संशय उत्पन्न हो गया है—है न ?

रेवती : नहीं ऐसी तो कोई बात नहीं।

बलराम : *मतलब यह कि कुछ अवश्य है। और तुम क्या सोचती हो अश्विनी ?*

अश्विनी : *मुझे भी कुछ ऐसा ही लग रहा है। परन्तु जेठे-सयानों पर संदेह कैसे करें ?*

बलराम : *याने तुम्हारे मन में भी इसी तरह का कोई संदेह है। और वह भी जेठे-सयानों के बारे में···यही न ?*

अश्विनी : *कम-से-कम कृष्ण ही आ जाता अभी···*

सेवक : (प्रवेश करके) *श्रीकृष्ण पधारे हैं। साथ में गर्ग मुनि हैं।*

बलराम : *भीतर भेज दो उन्हें।* (सेवक जाता है।) *गर्ग मुनि आए है ! अब निर्णय हो जायेगा सारे संशय का। सुना रेवती ? सुना अश्विनी ? इस समाचारका उन दोनों को तनिक भी पता न चलने देना। तुम स्त्रियों के पेट में बात ठहरती नहीं है···झट से बक दोगी।*

(कृष्ण और गर्ग मुनि प्रवेश करते हैं। बलराम गर्ग मुनि के चरणों पर मस्तक रखकर प्रणाम करता है। क्षण-भर के लिए सब स्तब्ध रहते हैं। उस स्तब्धता को देखकर गर्ग मुनि अस्वस्थ होते हैं।)

गर्ग मुनि : *अन्त में कृष्ण विजयी होकर आ गया। तुम ने सुन लिया न बलराम ?*

बलराम : *क्या हुआ मुनिराज ?*

गर्ग मुनि : *स्वयंवर भङ्ग हो गया···जो हम चाहते थे वही हुआ। कैशिकराज ने श्रीकृष्ण को विदर्भ का राजा बनाया। कृष्ण के राजा होते ही जरासंध की दुर्दशा हो गई। उसका षड्यन्त्र व्यर्थ हो गया। इसलिए रुक्मी ने*

स्वयंवर भङ्ग होने की घोषणा कर दी। विदर्भ का राज-मुकुट पुनः कैशिकराज को सौंप कर हम दोनों लौट आये।

बलराम : बहुत अच्छा हुआ। फिर भी स्वयंवर का भङ्ग होना उचित नहीं हुआ। यदि स्वयंवर होता तो रुक्मिणी कृष्ण को ही माला पहनाती और फिर आप के सारे परिश्रम सार्थक हो जाते। फिर भी जो हुआ, ठीक ही हुआ।

रेवती : क्या रुक्मिणी तुम्हें देखने को मिल गयी थी लाला?

गर्ग मुनि : कृष्ण को वह देखने को कैसे मिलती? पुरुषों को रनिवास में कौन जाने देता?

रेवती : क्या विदर्भ में इतने बन्धन हैं?

गर्ग मुनि : वह राजघराने की रीति है। उसे कौन तोड़ सकता है?

अश्विनी : लेकिन यहाँ मथुरा में हम कहाँ पालती हैं ऐसी रीति?

बलराम : हाँ, तुम तो चाहे जहाँ भटकती फिरती हो न? कृष्ण नेसारी स्त्री-जाति को बिगाड़ डाला है। कृष्ण ने कुछ ऐसा पाठ पढ़ाया है इस जाति को, कि पुराण-काल से चले आ रहे आचार-विचारों का अब कोई भी पालन नहीं करता।

अश्विनी : क्यों कृष्ण, सच में क्या तुम्हें रुक्मिणी देखने को नहीं मिली?

कृष्ण : झूठ क्यों बोलूँ? कुंडिनपुर के उद्यान में स्त्रियों का एक मेला लगा था। हमारे शिविर के निकट ही था वह उद्यान। कितनी ही तरुणियाँ एकत्रित हुई थीं वहाँ।

शुक्र तारे की तरह कोई एक युवती उस तारों के मेले में चमक रही थी···

अश्विनी : और पूर्णमासी के चन्द्रमा की तरह तुम्हारी उस शुक्र तारे की ओर टकटकी बँधी थी—यही न ?

रेवती : यह क्या कह रही हो तुम ? देखती नहीं कि मुनिराज उपस्थित हैं यहाँ ? ऐसी बातें क्या जेठे-सयानों के सामने की जाती हैं ?

गर्ग मुनि : कहने दो—कहने दो। मैं भी नहीं जानता था यह ! कृष्ण ने रुक्मिणी को देखा, उसी तरह रुक्मिणी ने भी कृष्ण को देखा होगा···

अश्विनी : क्यों जी, देखा था उसने तुम्हें ? बोलो न ? हँसते क्या हो ? उसने तुम्हें देखा—तुमने उसे देखा—उसे देखकर तुम हँसे—तुम्हें देखकर वह हँसी—आँखों-आँखों में ही बातें हुईं और मन से मन मिला। प्रथम दर्शन में ही दोनों एक दूसरे पर लुट गए—क्यों यही न ? (कृष्ण को दुलार से धक्का देकर) बोलो न ? केवल हँस क्या रहे हो ?

गर्ग मुनि : ये बातें कहने की नहीं होतीं, अश्विनी ! बिल्कुल ठीक ताड़ा है तुमने। ऐसा ही कुछ हुआ होगा। कृष्ण उस दिन प्रातःकाल के कमल की तरह खिल गया था, सो मुझे लगता है रुक्मिणी को देखने के कारण ही। अब कहीं मैं समझा !

अश्विनी : ऐसी बात है ? ऐसी बातें तरुणों के ध्यान में झट से आ जाती हैं। देखा भाभी, बिना देखे भी मैं किस तरह सब कुछ ठीक-ठीक ताड़ गयी।

रेवती : केवल ताड़ जाने से क्या होता है ? स्वयंवर होता, रुक्मिणी लाला के गले में वरमाला पहनाती, तो उसमें कुछ अर्थ था। केवल उसे देखा···उसने इन्हें देखा···ये हँसे···वह हँसी। इसमें ऐसी कौन-सी बड़ी बात हो गयी। विवाह में अपनी ठसक दिखाने की मेरी साध तो पूरी नहीं हुई ?

गर्ग मुनि : वह भी पूरी हो जाएगी। अब इस विवाह के होने में अधिक समय न लगेगा। भीष्मक का निश्चय तो हो ही चुका है। रुक्मिणी भी तैयार ही है ! अब केवल यही निश्चय करना है कि भाँवरें किस मुहूर्त पर पड़ें। क्यों जी बलराम, तुम क्यों कुछ नहीं बोलते ? जब से हम लोग आए हैं तब से इस प्रकार मौन क्यों बैठे हो ?

बलराम : आप लोग जरासंध को भूल रहे हैं।

गर्ग मुनि : अब जरासंध क्या कर सकता है ?

बलराम : क्या कर सकता है ? जरासंध को अभी आपने पहचाना नहीं है। बड़ा षड्यंत्रकारी है--बड़ा धूर्त है वह। उससे तो सदैव सावधान ही रहना चाहिए। कब क्या चाल चल जाए इसका कोई ठिकाना नहीं।

कृष्ण : अब और क्या चाल चलेगा वह ?

बलराम : देखो कृष्ण, मैं हूँ एक उजड्ड सिपाही, ये चालें मेरी समझ में नहीं आतीं। जैसा जरासंध चालबाज है, उसी तरह तुम्हें भी बड़ा अभिमान है अपनी चाल-

बाजी पर। इसीलिए तुम्हारी इस बात पर मुझे आश्चर्य होता है। लड़ाई में हार जाने से तो वह विशेष विचलित नहीं हुआ परन्तु, यह हार उसके हृदय में घर कर लेगी। वह चुप नहीं बैठेगा।

गर्ग मुनि : तुम्हारा यह भय व्यर्थ है, बलराम !

बलराम : यह आप कह रहे हैं ?

गर्ग मुनि : क्यों नहीं कहूँगा ? जरासंध अब किस आधार पर चाल चलेगा ?

बलराम : ऐसा विश्वास है आप का ?

कृष्ण : ऐसा क्यों कह रहे हो, दादा ! कुछ पता लगा है क्या ?

बलराम : तुम स्वयं कुंडिनपुर में थे। तुम्हें पता नहीं लगा ?

गर्ग मुनि : किस बात का पता नहीं लगा ?

बलराम : यह आप पूछ रहे हैं ?

कृष्ण : हँ-हँ दादा ! कैसी बातें कर रहे हैं आप ? साक्षात गुरु जी से ?

बलराम : हाँ, हाँ, गुरु जी से। गुरु जी को इस षड्यंत्र का पता होना ही चाहिए।

गर्ग मुनि : बलराम, इस गर्ग मुनि पर आरोप लगा रहे हो ! होश में हो या नहीं ?

बलराम : मैं पूरी तरह होश में हूँ इसीलिए तो कह रहा हूँ। मथुरा के लिए एक अवध्य पुत्र शंकर जी से आप ने ही तो माँगा था न ?

कृष्ण : *सभी को मालूम है यह बात।*

बलराम : *लेकिन सब यह कहाँ जानते हैं कि ऐसे पुत्र का जन्म भी हो चुका है?*

कृष्ण : *क्या ऐसा कोई पुत्र सचमुच जन्मा है?* (सब स्तब्ध *क्यों गुरु जी?*

गर्ग मुनि : *हाँ कृष्ण ऐसा पुत्र जन्मा है। परन्तु इस देश में नहीं—विदेश में···भारत की सीमा के पार वाले देश में। उससे मथुरा को कोई भय नहीं।*

बलराम : *यह आप कैसे कह सकते हैं?*

गर्ग मुनि : *बर्बर लोगों को यह पता तक नहीं है कि संसार में भारत नाम का कोई देश है।*

कृष्ण : *बर्बर देश में? बर्बर देश में आप का पुत्र?*

गर्ग मुनि : *हाँ, वृष्णि और अंधक ने मेरा अपमान किया था इस से चिढ़कर मैं हिमालय चला गया था। वहाँ मैंने घोर तपस्या की और शङ्कर जी को प्रसन्न कर वरदान माँगा। जाने कैसे यह बात बर्बर देश के राजा को ज्ञात हो गयी और वह मुझे बंदी बनाकर अपने देश ले गया।* (ठहर जाते हैं।)

कृष्ण : *आगे क्या हुआ?*

गर्ग मुनि : *वहाँ मुझ पर बलात्कार किया गया।*

बलराम : *किसने बलात्कार किया? क्या बर्बर देश की राज कन्या ने? स्त्री ने पुरुष पर बलात्कार किया?*

गर्ग मुनि : *बलराम, वह भारत नहीं है। बर्बर देश की स्त्रिय*

पुरुषों से भी बढ़-चढ़कर होती हैं । वहाँ प्रत्यक्ष रूप से स्त्री-राज्य भले ही न हो, फिर भी स्त्रियों का प्रभुत्व वहाँ इतना अधिक है कि पुरुष भी उनके सामने पानी भरते हैं ।

बलराम : मथुरा का वह वैरी उस बर्बर देश में जन्मा और उसके बारे में हमें कोई जानकारी भी नहीं ?

गर्ग मुनि : जानकारी की कोई आवश्यकता ही न थी । यदि वैसा कोई अवसर आता; तो मैं तुम्हें सावधान कर देता ।

बलराम : वही समय अब आ गया है । जरासंध ने कालयवन से संधि करना आरंभ कर दिया है ।

कृष्ण : कौन कहता है ?

बलराम : कोई भी कहता हो परन्तु उसमें तथ्य है, इसमें संदेह नहीं । अन्यथा इस बात का मुझे कैसे ज्ञान होता ?

कृष्ण : परन्तु यह जरासंध को भी कैसे मालूम हुआ ? जो बात हम यादव भी नहीं जानते, उसे यादवों का वैरी कैसे जान गया ?

बलराम : यही तो मैं भी पूछ रहा हूँ । जरासंध को यह कैसे मालूम हुआ ? गर्ग मुनि का कुंडिनपुर जाना, जरासंध का वहाँ उपस्थित रहना, उसकी तेजोभंग होना और उसी समय उसे इस बात का पता चलना, यह सब केवल संयोग की बात हो, ऐसा मुझे नहीं लगता ।

कृष्ण : हूँ-हूँ दादा—क्या कर रहे हो यह ? गुरु जी प
यह अभियोग ?

बलराम : तुम्हें भी यही लगा न ?

कृष्ण : मुझे ऐसा कभी नहीं लगेगा। लेकिन आप ने बात ही ऐसे ढङ्ग से कही है कि कोई भी यह सोच सकता है कि आप गुरु जी पर अभियोग लगा रहे हैं।

बलराम : हाँ, हाँ! मैं यह अभियोग ही तो लगा रहा हूँ साफ-साफ अभियोग। बताओ न, इसी समय जरा संध को इसका कैसे पता चला ?

गर्ग मुनि : बलराम, तुम क्या बक रहे हो? जरासंध को परास्त करने के लिए मैं कृष्ण को लेकर कौशिकराज के यह गया। वहाँ उसका राज्याभिषेक कराया और जरा संध का दाँव उलट दिया। इसके बाद भी क्या तु कह सकते हो कि मैं ही जरासंध से यह रहस्य प्रक करूँगा ?

बलराम : पुराने बैर बड़े विकट होते हैं मुनिराज ! बदले क भावना पीढ़ियों से चली आती है। उपकार दिखावे के भीतर हम से बदला लेने की यह योजन बनाई गयी है—ऐसा हम क्यों न समझें ?

रेवती : मैं पैर पड़ती हूँ। ऐसी ऊँट-पटाँग बातें नहीं कहन चाहिए। गुरु जी का अपमान है यह।

बलराम : चुप बैठो। यह भारत है। बर्बर देश नहीं। स्त्रिय की तूती भारत में नहीं बोली है अभी तक। कु

भी हो, फिर भी हम उनके शिष्य हैं—वंशज नहीं और औरस पुत्र तो हैं ही नहीं। अभी वे शिष्य की दम पर ही ज्ञान बघारते हैं। जब स्वयं उनका पुत्र ही मथुरा का राजा हो जायगा तब तो उनके पैर ही जमीन पर न पड़ेंगे।

कृष्ण : दादा, दादा, किस चांडाल ने यह बेतुकी बात भर दी है आप के मन में—यह विचार ही आपके मन में कैसे आया कि यादव-कुल से गुरु जी द्रोह करेंगे ?

बलराम : वृष्णि और अंधक भी तो यादव ही थे।

कृष्ण : लेकिन उन्होंने गुरु जी का अपमान किया था। कंस ने भी गुरु जी का अपमान नहीं किया था। हम लोगों ने तो उन्हीं के आशीर्वाद से मथुरा का राज्य पुनः प्राप्त किया है। यदि वे मथुरा के राज्य को किसी विदेशी को देना चाहते तो हमारी रक्षा ही क्यों करते ? नहीं दादा, आपकी बात मुझे बिल्कुल नहीं जँचती। किसी बैरी ने यादवों के अकल्याण के लिए ही यह मिथ्या समाचार फैला दिया है, इस में संदेह नहीं।

बलराम : तो क्या यह समाचार मिथ्या है ?

कृष्ण : यह मैं कैसे कह सकता हूँ ? जब तक बर्बर देश का राजा मथुरा पर आक्रमण न कर दे तब तक यह कैसे कहा जा सकता है कि यह समाचार झूठ है ?

बलराम : तो तुम्हारा मतलब यह है कि तब तक प्रतीक्षा

करते रहें ? परन्तु याद रखना। उसने मथुरा पर चढ़ाई की तो मथुरा का नाश ही समझो। शङ्कर जी का वरदान है उसे !

कृष्ण : तो अब क्या करना चाहिए ?

बलराम : वही तो मैं पूछ रहा हूँ कि अब क्या करना चाहिए ! कैसे इस संकट का प्रतिकार करेंगे ? और क्या सावधानी बरतें, अब पूछो न अपने गुरु जी से !

गर्ग मुनि : बलराम, क्रोध से तुम इस समय उन्मत्त हो गये हो। संशय ने तुम्हें पछाड़ा है। (आसन से उठकर) इस समय तुम से विवाद करना व्यर्थ है।

(शान्तिपूर्वक चले जाते हैं। सब लोग क्षण-भर के लिए स्तब्ध रहते हैं)

बलराम : देखो-देखो कृष्ण, क्या अब भी तुम्हें मेरी बात असत्य मालूम होती है ?

कृष्ण : अभी तक मुझे विश्वास नहीं होता, दादा।

बलराम : यदि तुम्हारे विश्वास होते तक प्रतीक्षा की गयी तब तो मथुरा का विध्वंस ही हो जाएगा…

कृष्ण : मथुरा का सिंहासन इतना अस्थिर नहीं है, दादा !

बलराम : ऐसा तुम सोचते हो—मैं नहीं सोचता। मैं मथुरा का सेनापति हूँ। मुझे अपना उत्तरदायित्व पहचानना चाहिए। मैं षड्यन्त्रों को नहीं समझता—षड्यन्त्रों की मुझे चिन्ता भी नहीं। यह मानकर ही कि कालयवन मथुरा पर आक्रमण करने आ रहा है, जो कुछ करना है, मैं करूँगा। इसके लिए मुझे तुम्हारे

परामर्श की आवश्यकता नहीं। (जाता है। सब स्तब्ध रहते हैं।)

कृष्ण : कौन लाया है यह समाचार ?

रेवती : कुण्डिनपुर से एक दूतिका आयी थी। वह यह समाचार लायी है। दंतवक्त्र महाराज ने यह सँदेशा लेकर उसे भेजा था यहाँ।

कृष्ण : दन्तवक्त्र ने ? उन्होंने मुझसे वहीं क्यों नहीं कह दिया ?

अश्विनी : वहाँ तुमसे कहने में कदाचित उन्हें कोई अड़चन प्रतीत हुई हो। जरासंध की नजर भी हो उस पर। कौन कह सकता है ? दूसरे, गर्ग मुनि सदा तुम्हारे सङ्ग रहते थे, सम्भवतः इसलिए उन्होंने तुमसे न कहा हो।

कृष्ण : बड़ा जटिल प्रश्न खड़ा हो गया है। यदि यह समाचार सत्य है तो वास्तव में प्रसङ्ग बड़ा विकट है। यदि कालयवन आ पहुँचा तो मथुरा का विध्वंस निश्चित ही है। उसके आगे किसी का भी पराक्रम नहीं टिकेगा। जरासंध ने लाजवाब चाल चली है, इसमें संदेह नहीं। भाभी, कुछ समय के लिए आप दादा को तनिक रोके रहें। मैं जानता हूँ कि यह काम बड़ा कठिन है परन्तु आपकी चतुराई की परीक्षा का यही समय है। आगे क्या करना है, सो मैं देखता हूँ। कुल मिलाकर प्रसङ्ग बड़ा कठिन है, इस में सन्देह नहीं।

(परदा गिरता है।)

●

दूसरा दृश्य

[कुंडिनपुर के राजप्रासाद के निकट का एक उद्यान। भीष्मक और दंतवक्त्र।]

भीष्मक : *यह तुम ने क्या किया दंतवक्त्र? कम-से-कम पहले मुझसे तो पूछ लेते? वाला-बाला सँदेशा भेज दिया और वह भी एक दूती के हाथ! पत्र क्यों नहीं लिख दिया?*

दंतवक्त्र : *पत्र कैसे लिखता? बीच ही में किसी के हाथ पड़ जाता तो? जरासंध पहले से ही मुझ पर सन्देह करता है—निरन्तर मुझ पर कड़ी नजर रखता है। यह तो अच्छा हुआ जो वह दासी मिल गयी, अन्यथा कुछ भी न हो सकता था।*

भीष्मक : *फिर कृष्ण से ही यहाँ क्यों नहीं कह दिया?*

दंतवक्त्र : *कैसे कहता? गर्ग मुनि से वह एक क्षण के लिए भी तो अलग नहीं होता था? उसे अलग कैसे ले जाता? और यह उचित भी नहीं था।*

भीष्मक : *गर्ग मुनि के समक्ष ही कह देने में क्या आपत्ति थी?*

दंतवक्त्र : *कैसे कहता? उनके ही पुत्र का तो प्रश्न था न?*

भीष्मक : *था तो क्या हुआ? वे अपने पुत्र को रोकते। जरासंध के सँदेशे के साथ-साथ उनका सँदेशा भी पहुँच जाता कालयवन के पास।*

दंतवक्त्र : *मैं ऐसा नहीं सोचता। मैं वह सारा इतिहास जानता हूँ। भारत पर आक्रमण करने के उद्देश्य से ही बर्बर देश का राजा गर्ग मुनि को बन्दी बनाकर ले गया था—उसकी भारत पर कुदृष्टि है। बर्बर देश का वह राजा अभी तक जीवित है और उचित अवसर की घात में ही पहले से बैठा है। किसी घर-भेदिये की सहायता के बिना भारत की सीमा पार करना उसके लिए सम्भव नहीं था। इसीलिए वह आज तक चुप बैठा था। अब जरासंध का सँदेशा पहुँचने पर अनायास ही उसका मार्ग खुल जायेगा। जरासंध की सहायता पा जाने से भारत की सीमा पार कर मथुरा तक पहुँचने में उसे कोई कठिनाई न होगी। इसीलिए मैंने बलराम को समय पर ही सावधान कर दिया है। यदि ऐसा न करता तो आक्रमण अचानक और अकल्पित हो जाता और फिर किसी का कुछ भी वश न चलता।*

भीष्मक : *कितना द्रोह है यह भारत से? क्या करें इस जरासंध को? कैसी अधमता कर रहा है वह! प्रतिकार की घृणित भावना के वशीभूत होकर एक विदेशी को अपने घर बुला रहा है! यह उसकी समझ में कैसे नहीं आता?*

दंतवक्त्र : *मैं भी तो यही कहता हूँ। एक बार मेरे मन में आया था कि उससे विवाद करूँ, उसे समझाऊँ। पर क्षण-भर सोचने के बाद मुझे ऐसा लगा कि वह उन्मत्त मनुष्य मेरी बात नहीं मानेगा। उलटे, मुझसे*

और अधिक चिढ़ जायेगा। इसीलिए मैंने फिर यह उपाय किया।

भीष्मक : *खैर, जो हुआ, सो एक दृष्टि से अच्छा ही हुआ। अब तुम्हारा समाचार बलराम को ठीक समय पर पहुँच जाए तो अच्छा होगा। यदि उस दूती के मार्ग में कोई बाधा न आयी तो हमारा काम हो जायेगा!*

दंतवक्त्र : *इस सम्बन्ध में क्या आप कुछ भी न कर सकेंगे?*

भीष्मक : *मैं क्या कर सकूँगा? तुम तो देख ही रहे हो कि मैं किस तरह असमर्थ हूँ। सारा कारोबार रुक्मी के हाथ में है और उसके विरुद्ध कुछ भी करना मेरे लिए सम्भव नहीं है। फिर जरासंध से मैं यह कह भी कैसे सकता हूँ? यदि उसने मुझसे यह प्रश्न किया कि तुम्हें इसका पता कैसे चला तो मैं क्या उत्तर दूँगा? यह एक बड़ा विकट प्रसङ्ग उपस्थित हो गया है!*

दंतवक्त्र : *क्या कैशिक महाराज भी कुछ नहीं कर सकेंगे?*

भीष्मक : *हाँ, यह सुझाव अच्छा है। तुमने बिल्कुल उचित समय पर सुझाया। आज ही लौट रहे हैं वे अपने नगर को। वे यह कहने आए थे कि कृष्ण ने उनका मुकुट उन्हें वापस कर दिया है। कितना उदार हृदय है कृष्ण का?*

(कैशिकराज का प्रवेश।)

कैशिक : *डरो मत भीष्मक। मैंने सब सुन लिया है। अब यह सब भार मुझ पर रहा। मुझे किसी का भी भय*

नहीं। क्यों डरते हो इस सर्वनाशी रुक्मी से ? इस थोथे भय से विदर्भ धूल में मिल जायेगा।

भीष्मक : किस मुँह से कहूँ कि मैं असमर्थ हूँ ? मुझ में इतना साहस नहीं है। जब मुझे पता चला कि इस षड्-यन्त्र में रुक्मी का हाथ है; तब मुझे प्राणान्तक कष्ट हुआ। मेरे ही स्वजनों के सत्यनाश के लिए मेरा ही पुत्र क्यों कारणीभूत हो ? मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया था जिससे यह कुलांगार मेरे यहाँ जन्मा ?

कैशिक : उस कुलांगार का नाश हो। अपनी सन्तान को ही अभिशाप दे रहा हूँ, इसलिए तुम मुझे दोष मत देना दंतवक्त्र—यह आपत्ति केवल मथुरा पर ही नहीं है, समूचा भारत ही विदेशियों के हाथ में चला जाएगा। जो यह नहीं समझता और झूठे मित्र-प्रेम का शिकार होकर अपने देश से द्रोह करने को अग्र-सर हुआ है, उसे अभिशाप न दूँ तो और क्या करूँ ? जरासंध से अधिक इस रुक्मी पर क्रोध आ रहा है मुझे !

दंतवक्त्र : क्रोध करने से क्या होगा ? इस समय यदि आप रुक्मी के प्राण भी ले लें तो भी जरासंध के हाथ से छूटा हुआ बाण अब पीछे नहीं लौट सकता। सम्भवतः शाल्वराज अब तक बर्बर देश के लिए प्रस्थान भी कर चुके होंगे।

भीष्मक : अभी वह गया तो नहीं न ?

दंतवक्त्र : मैं यह निश्चित रूप से नहीं कह सकता। परन्तु

अपने राज्य का उचित प्रवन्ध करके वे जरासंध के पास जाने वाले हैं। और फिर वहाँ से उसका आज्ञापात्र लेकर कालयवन के पास जायंगे।

कैशिक : *तो हमें अब शीघ्रता करनी चाहिए। भले ही मेरा अपमान हो, मुझे इसकी चिन्ता नहीं। अब मैं जरासंध से अवश्य मिलूँगा।*

भीष्मक : *क्यों मिलेंगे आप उस नराधम से ?*

कैशिक : *भारत की रक्षा के लिए कठिन से कठिन परीक्षा देने को मैं प्रस्तुत हूँ। मैं उसे समझाऊँगा, उससे विवाद करूँगा। यदि इसके बाद भी जरासंध न मानेगा तो मैं उसके चरणों पर गिर पड़ूँगा। जरासंध को इस घोर पाप से बचाने के लिए मैं सारे अपमान सहन कर लूँगा—मेरी जो भी विडम्बना होगी उसकी मैं तनिक भी चिन्ता न करूँगा। परन्तु अन्त में मैं उसका मन फेर कर ही रहूँगा।*

दंतवक्त्र : *यह आप का भ्रम है महाराज ! क्षमा कीजिए। मैं कहता हूँ कि आप ने जरासंध को अभी पहचाना नहीं है। उस सत्रह बार की हार की अपेक्षा इस हार का शूल उसके हृदय में अधिक चुभ गया है। वह आप की बात सुनेगा ही नहीं।*

कैशिक : *मैं भी अब किसी की नहीं सुनूँगा। भीष्मक, चलो मेरे साथ। मगधेश से भेंट करते समय तुम्हें भी मेरे साथ होना चाहिए।*

(तीनों जाते हैं।)

तीसरा दृश्य

[जरासंध के राजमहल का एक कक्ष । जरासंध अस्वस्थता से टहल रहा है । रुक्मी एक ओर खड़ा है ।]

जरासंध : *अभी तक शाल्वराज कैसे नहीं आए ? इस बात के फैलने से पहले ही उन्हें कालयवन के यहाँ पहुँच जाना चाहिए था ।*

रुक्मी : *हम तीनों के सिवाय और कौन जानता है यह बात ?*

जरासंध : *मुझे संदेह हो रहा है—दन्तवक्त्र पर संदेह हो रहा है । यह सच है कि हमारी गुप्त मंत्रणा में वह उपस्थित नहीं था । परन्तु निश्चय ही उसे कुछ सुराख लग गया है । उसका यादवों की ओर अधिक झुकाव है ही—कृष्ण का भी पक्षपाती है वह । स्वयंवर के समय क्या उसी ने हमारा विरोध नहीं किया था ?.*

रुक्मी : *ऐसे घरभेदिये बड़े ही घातक होते हैं । ये विभीषण ही अंत में स्वजनों के नाश का कारण बनते हैं । इसमें उनका कोई स्वार्थ भी नहीं रहता । किसी के भी काम में बाधा पहुँचाना ही उनका स्वभाव होता है । ये घरभेदिये अपने इसी स्वभाव के बल पर, दूसरों को दुष्ट सिद्ध करके स्वयं अपनी सज्जनता का ढिंढोरा पीटते हैं ।*

जरासंध : *घरभेदियों के षड्यंत्रों की चर्चा करने मात्र से*

क्या लाभ है ? इन पर हमें बड़ी कड़ी नजर रखनी चाहिए। पहले से ही मैं तुम्हें सावधान कर रहा हूँ। परन्तु तुम्हारी ओर से ढिलाई हो रही है रुक्मी! क्यों आए इधर? क्या आवश्यकता थी यहाँ आने की? अपनी योजना को पूरी करने के लिए मैं समर्थ हूँ। तुम्हारी सहायता की मुझे अपेक्षा नहीं। संभवतः तुम्हें लगा होगा कि मैं चुप बैठ जाऊँगा,—ठहरो,—बोलो नहीं,—तुमने यही सोचा और दौड़कर चले आये— यह षड्यंत्र क्या तुम्हारे मस्तिष्क की उपज थी? क्या किसी ने भी कभी यह चाल सोची थी?

रुक्मी : हम कहाँ जानते थे यह इतिहास?

जरासंध : इसे कोई भी नहीं जानता था। यादवों को भी नहीं मालूम था कि कालयवन गर्ग मुनि का पुत्र है। मैंने बहुत समय से ही बर्बर देश के राजा से मित्रता स्थापित कर रखी है इसीलिए इस बात का मुझे पता चला। तुम सब मेरे मित्र हो, सब यादवों के बैरी हो—पर कोई किसी पर विश्वास नहीं रखता। इसीलिए मैंने पहले से ही इस विदेशी यवन से संधि कर ली थी। ऐसे काम के लिए स्वजनों की अपेक्षा पराये ही अच्छे होते हैं। यदि कुछ विपरीत हो ही गया तो कम-से-कम यह तो कह सकते हैं कि विदेशी होने के कारण उसने हमें धोखा दे दिया। लेकिन तुम लोग? तुम्हारा यह हाल है कि तुम पर विश्वास रखें—मित्र मान कर तुम पर विश्वास रखे रहें, तो भी

अन्त में अपयश ही हाथ आता है। ऐसा ही होता आया है आज तक। कुंडिनपुर छोड़ कर तुम क्यों आये यहाँ इस समय ?

रुक्मी : क्यों आया ? जी जल रहा था इसलिए आया। स्वयं मेरे दादा जी ने मुझे परास्त कर मेरा घमंड चूर कर दिया इसलिए आया। किस के पास जाऊँ मैं ? किस से सहायता लूँ ? किस पर विश्वास करूँ ? बाप बैरी—दादा बैरी—घर का प्रत्येक व्यक्ति बैरी—सब यादवों के पक्षपाती। इन सब बैरियों का सामना करते-करते थक गया, इसलिए आपके पास चला आया—आपका आश्वासन प्राप्त होगा इसलिए आया। और आप ही मुझे दोष दे रहे हैं ?

जरासंध : क्रोध न करो, रुक्मी ! तुम्हारी कठिनाइयों को मैं समझता हूँ। परन्तु कम-से-कम इस समय तो तुम्हें कुण्डिनपुर नहीं छोड़ना चाहिए था। उन लोगों को यही लगना चाहिए कि हम लोग थक गये हैं, निराश हो गये हैं, पराभूत हो जाने से चिढ़कर हताश हो गये हैं। यदि उन्हें तनिक भी हमारी-हलचल का पता चला तो राजा भीष्मक तुरन्त ही यादवों को सावधान कर देगा। तुम जानते ही हो कि कृष्ण महान छलिया है। मुझे बलराम से तनिक भी भय नहीं लगता। परन्तु कृष्ण क्या चाल चल जायेगा इस का किसी को पता तक न चलेगा। इसीलिए तुम्हें यहाँ नहीं आना चाहिए था।

रुक्मी : *मुझ से भूल हो गयी। अनजाने भूल हो गयी। मैं इन दाव-पेंचों को नहीं समझ सकता। इसलिए वहाँ से यहाँ चला आया। क्या अब इसी समय लौट कर चला जाऊँ ?*

जरासंध : *ठहरो। पहले शाल्वराज को आ जाने दो। उन्हें रवाना करके फिर आगामी कार्य-क्रम निश्चित करेंगे।*

रुक्मी : *क्या कालयवन शाल्वराज को पहचानता है ?*

जरासंध : *मुझे छोड़कर भारत के किसी भी राजा को वह नहीं पहचानता। इसीलिए मैं शाल्वराज को अपना आज्ञा-पत्र देने वाला हूँ।* (देखकर) *लो, देखो, वे आ ही गये।* (शाल्व आता है।) *आइए शाल्वराज, हो गये तैयार ?*

शाल्वराज: *जी हाँ। सब तैयारी हो चुकी है। साथ में पर्याप्त सैनिक लेकर जाने की तैयारी से ही आया हूँ यहाँ।*

जरासंध : *सैनिक लेकर आये हो ? नहीं, यदि सैनिक साथ रहेंगे तो कालयवन बिचक जायेगा। यवन बड़े संशयालु होते हैं। हम भारतीयों पर उनका तनिक भी विश्वास नहीं। केवल एक-दो सेवक ही साथ लेकर जाइए।*

शाल्वराज: *क्या इस तरह जाने में धोखा नहीं है ? यवन ठहरे— कदाचित प्राण ही ले लें।*

जरासंध : *मेरी ध्वजा साथ में रहने पर किसी से तुम्हें कोई भय नहीं रहेगा। यवनों के राजा पर मेरा प्रभाव ही वैसा है। जरासंध के दूत होकर आप जायेंगे···*

शाल्वराज: जरासंध के दूत होकर ?

जरासंध : क्यों, क्या दूत बनकर जाने में तुम्हें लज्जा मालूम होती है ?

शाल्वराज: जिस दिन हमने मगधाधिपति का नेतृत्व स्वीकार किया उसी दिन मानापमान के सारे विचार हम ने छोड़ दिये। यह लज्जा मालूम होने का प्रश्न नहीं है। मुझे जो संकोच हो रहा हैं वह यही कि किस नाते मैं उसके पास जाऊँ ?

जरासंध : वह सब मैंने अपने आज्ञा-पत्र में लिख दिया है। उसकी आप चिन्ता न करें। कालयवन मेरी तरह ही आप का सम्मान करेगा।

शाल्वराज: ठीक है। अब मुझे संतोष हो गया।

रुक्मी : मतलब ? क्या अभी तक आप को संतोष नहीं हुआ था ?

शाल्वराज: यह राजनीति है रुक्मी ! दो देशों की राजकीय मित्रता का महा विकट प्रश्न है यह। बार-बार संदेह होता है कि यह विकट कार्य किस प्रकार संपन्न होगा। जब तक कालयवन मथुरा पर आक्रमण नहीं कर देता, तब तक हर प्रकार से हमें सचेत रहना चाहिए। तुम यहाँ क्यों आए रुक्मी ?

जरासंध : देखो रुक्मी, शाल्वराज को भी यही लग रहा है।

रुक्मी : मैं राजनीति के अखाड़े का अभी पक्का खिलाड़ी नहीं हुआ हूँ। भूल करके ही तो मनुष्य सीखता है। ऐसी भूलें करके ही तो मैं भी सीख रहा हूँ।

शाल्वराज : *क्रुद्ध न होओ रुक्मी। यह बड़ा संकटकालीन समय है। इस समय हमें अत्यन्त सचेत रहना चाहिए। यदि इस समाचार का पता उन लोगों को चल गया तो कृष्ण सावधान हो जायेगा। वह भारत की सीमा पर ही कालयवन को रोककर उसे पीछे भगा देगा और फिर हम हाथ मलते रह जायेंगे। बड़ा छलिया है कृष्ण। कृष्ण से हमें सदा बहुत सचेत रहना चाहिए।*

जरासंध : *है तो अभी बच्चा ही; पर पुरुषार्थ कितना है उस में ? मैं कितना मँजा हुआ और विख्यात कूटनीतिज्ञ हूँ, पर उसने मुझे भी पानी पिला दिया ! दामाद की हत्या का बदला लेने की भावना यदि मेरे हृदय में निरन्तर जलती न रहती तो मैं उसका नाम लेना ही छोड़ देता। लेकिन अब मैंने हठ ठान ली है। अब पीछे नहीं हट सकता। हम दोनों में से किसी एक का विनाश होना ही चाहिए···*

शाल्वराज : *ऐसा क्यों कह रहे हैं जरासंध महाराज ? हम जैसे पराक्रमी वीर जब आप के सहायक हैं तब, उस ग्वाले के छोकरे से डरने की क्या आवश्यकता ?*

जरासंध : *जिस तरह तुम्हारे समान मेरे सहायक हैं, उसी तरह भीष्मक और कैशिक जैसे घर के बैरी भी हैं। इन्हीं के भय से मैं हिम्मत हार जाता हूँ। यदि डंके की चोट कोई अपना बैर प्रकट करे तो उससे आमने-सामने लड़ा जा सकता है। लेकिन इन घर-भेदियों से भगवान ही बचाये। ये बड़े विकट होते हैं। आज*

तक हमारे सारे षड्यन्त्रों पर इन्हीं के कारण तो पानी फिर गया है।

सेवक : (प्रवेश करके) विदर्भाधिपति कैशिक महाराज और कुंडिनपुराधिपति भीष्मक महाराज पधारे हैं और आपसे भेंट की याचना कर रहे हैं।

जरासंध : देखो रुक्मी, देख लो शाल्वराज, मैं ने जो कहा, वह सच हुआ न? (सेवक से) जाओ। उन्हें सम्मान-पूर्वक भीतर ले जाओ। (सेवक जाता है।) क्यों आये हैं ये लोग? कैशिक तो विदर्भ चल दिये थे न? क्यों वापस आ गये वे?

रुक्मी : कुंडिनपुर में मेरे रहते तक तो दादा जी नहीं आये थे वहाँ। मुझे इतना ही पता चला था कि कृष्ण ने पुनः उन्हें उनका राजमुकुट सौंप दिया है। जाने क्यों आये हैं?

(भीष्मक और कैशिकराज प्रवेश करते हैं। जरासंध दोनों को आलिंगन कर उनका स्वागत करता है।)

कैशिक : मगधेश की जय हो!

जरासंध : गुरुजनों का यह आशीर्वाद मन से है न?

कैशिक : मन से आशीर्वाद क्यों नहीं दूँगा? मैं मगधेश की जय की कामना क्यों नहीं करूँगा?

जरासंध : यदि ऐसा होता तो कृष्ण को आप विदर्भ का राजा न बनाते।

कैशिक : यदि मैंने कृष्ण को विदर्भ का राजा बना दिया तो इससे मगधेश का क्या बनता-बिगड़ता है?

जरासंध : क्या आप सोचते हैं कि इससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं ? कृष्ण के अनधिकृत रीति से राजा होने में मगध देश के राज-गौरव पर क्या कुठाराघात न होगा ?

भीष्मक : परन्तु अब कृष्ण राजा है कहाँ !

रुक्मी : मतलब ?

कैशिक : कृष्ण लोभी नहीं है। दूसरों के अधिकार का अपहरण करने का उसका स्वभाव नहीं। कार्य सिद्ध होते ही कृष्ण ने विदर्भ का राजमुकुट पुनः मुझे सौंप दिया।

रुक्मी : अच्छा, तो ऐसा षड्यन्त्र रचा गया था !

जरासंध : शान्त हो रुक्मी ! कैशिकराज, आप के आशीर्वाद के प्रति मैंने शङ्का व्यक्त की, इसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। आप आज यहाँ किस लिए पधारे हैं ? आप की क्या सेवा करूँ ?

कैशिक : मैंने एक अत्यन्त अनिष्टकारी समाचार सुना है, जो केवल मगध देश के लिए ही नहीं किन्तु संपूर्ण भारत के लिए भी अनिष्ट का कारण बन सकता है। यह अशुभ समाचार पाकर ही मैं जान-बूझकर यहाँ आया हूँ। राजा जरासंध, यह कैसा आत्मघात कर रहे हो तुम ?

जरासंध : क्या किया है मैंने ?

कैशिक : अब मुझे स्पष्ट कहने के लिए क्यों बाध्य कर रहे

हो ? क्या तुम ने बर्बर देश के राजा को मथुरा पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित नहीं किया है ?

जरासंध : हाँ, किया है। तो फिर ?

कैशिक : क्यों एक विदेशी को अपने घर में घुसा रहे हो ?

जरासंध : अपना बदला चुकाने के लिए।

कैशिक : क्या तुम स्वयं दुर्बल हो ?

जरासंध : यदि युद्ध में दो वीर परस्पर एक दूसरे की सहायता लें तो इसमें बुराई क्या है ?

कैशिक : कृष्ण के लिए क्या तुम अकेले काफी नहीं हो ?

रुक्मी : यह मगधाधिपति का अपमान है।

कैशिक : कल के छोकरे को मुझे सिखापन देने की आवश्यकता नहीं। बोलो राजा जरासंध, क्या तुम यह स्वीकार करने को तैयार हो कि कृष्ण से युद्ध करने की अकेले तुममें सामर्थ्य नहीं ?

जरासंध : मान लो, मैंने यह स्वीकार कर लिया···

भीष्मक : स्वीकार क्यों नहीं करोगे ? सत्रह बार जो कृष्ण से हार चुके हो।

जरासंध : युद्ध में नहीं—ऐसे युद्ध में नहीं—जहाँ दो तुल्यबल सेनायें लड़ी हों—मैं तो केवल बाहु-युद्ध में परास्त हुआ था।

भीष्मक : तुम्हारे सामने तो कृष्ण—एक सुकुमार बालक है।

जरासंध : पर कृष्ण बड़ा छलिया है—बड़ा चालाक है। वह इतना षड्यन्त्रकारी और छलिया है कि अपने प्रति-

पत्नी को पराजित करने के लिए धर्मयुद्ध के सारे नियमों को ताक में रख देता है। मेरी असावधानी का लाभ उठा कर ही उसने मुझ पर विजय प्राप्त की।

भीष्मक : क्या सत्रहों बार ?

जरासंध : हाँ-हाँ,—सत्रहों बार। बालक समझ कर मैंने उस पर दया दिखायी और उसी का उसने लाभ उठाया।

कौशिक : जिन वीरों के हृदय में दया होती है, वे दूसरों पर अकारण आक्रमण नहीं किया करते।

जरासंध : उसने मेरे दामाद की हत्या की थी।

भीष्मक : नहीं, बाहु-युद्ध में कृष्ण ने उसे पराभूत किया था। धोखा देकर कृष्ण को मारने का विचार था कंस का। आत्मरक्षा के लिए ही कृष्ण ने कंस-वध किया।

जरासंध : किसी भी कारण से क्यों न हो; कृष्ण ने मेरे दामाद की हत्या की। उस हत्या का यदि मैं बदला न लूँ तो वीर कैसा ?

कौशिक : तो यह बदला क्या तुम किसी विदेशी की सहायता से लोगे ?

जरासंध : चाहे जिस उपाय से जैसे भी हो मैं कृष्ण का सत्यानाश कर देना चाहता हूँ। कालयवन कृष्ण के लिए अवध्य है। तो फिर मैं उसकी सहायता क्यों न लूँ ?

भीष्मक : विदेशी की सहायता लोगे ? भारत के शत्रु की सहायता लोगे ?

जरासंध : *यह आप से किसने कहा ?*

कैशिक : *किसी ने भी कहा हो। परन्तु यह सच है न ?* (जरासंध स्तब्ध) *बोलो राजा जरासंध, सच बोलो, गुरुजन के नाते मैं पूछ रहा हूँ। क्या तुम्हारा दूत गया कालयवन के यहाँ ?*

जरासंध : *यह पूछने का आपको क्या अधिकार है ?*

कैशिक : *मैंने तुमसे अभी कहा न ? गुरुजन के नाते ही मैं तुम से पूछता हूँ···*

जरासंध : *मैं किसी को भी अपना गुरुजन नहीं मानता···*

भीष्मक : *किसे उत्तर दे रहे हो जरासंध ?*

रुक्मी : *नाती के द्वेष के कारण स्वयं अपने पुत्र से विलग होने वाले विदर्भराज को।*

भीष्मक : *साक्षात अपने पिता का अपमान करनेवाले पुत्र के मुँह से उत्तर सुनने की मुझे आवश्यकता नहीं। राजा जरासंध, तुम मेरे प्रश्न का उत्तर दो।*

जरासंध : *जो मैं कह चुका—वही मेरा उत्तर है। मैं नेता हूँ इस राजमंडल का।*

कैशिक : *कम से कम मेरे तो निश्चित नहीं। मुझे किसी का भी नेतृत्व स्वीकार नहीं।*

जरासंध : *मैं भी किसी का उपदेश सुनने के लिए तैयार नहीं। मैं स्वयं समर्थ हूँ। अपने काम में मैं किसी को भी हस्तक्षेप न करने दूँगा। कैशिकराज, क्या और भी कुछ कहना चाहते हैं आप ?*

कैशिक : *इस तरह घुमा-फिरा कर क्यों बोल रहे हो? साफ-साफ क्यों नहीं कह देते कि यहाँ से निकल जाओ।*

जरासंध : *इस सीमा तक मैं नहीं जाना चाहता।* (भीतर कोलाहल होता है।) *क्या है? कैशिकराज, इस अतुल प्रतापी जरासंध को*···

कृष्ण : (प्रवेश करके) *कौन-सा अतुल प्रतापी जरासंध?*

जरासंध : *कौन? कृष्ण? तू यहाँ कैसे आया? अतुल प्रतापी इस जरासंध को क्या तू नहीं पहचानता?*

कृष्ण : *मैं जरासंध को पहचानता हूँ। लेकिन उसके अतुल प्रतापी होने का अभी तक मुझे कोई प्रमाण नहीं मिला।*

कैशिक : *शाबास कृष्ण!*

जरासंध : (दाँत-ओंठ चबाकर) *तू यहाँ आया कैसे? क्यों आया?*

कृष्ण : *मैं सर्वसंचारी हूँ। किसकी हिम्मत है जो मेरे संचरण पर प्रतिबन्ध लगाये? देखो, किस तरह सीधा आकर खड़ा हो गया। और तुम ने पूछा कि क्यों तुम्हारे सामने आया सो इसलिए कि जो आत्मघात तुम कर रहे हो, उससे तुम्हें विमुख करने के लिए।*

शाल्वराज : (मंद स्वर में जरासंध से) *लगता है सब ने मिलकर कोई षड्यन्त्र रचा है।*

जरासंध : (कृष्ण से) *मेरी चिन्ता तू क्यों करता है?*

कृष्ण : *यदि बैरी हो तो तुम मेरे बैरी हो। शत्रु हो या कि*

मित्र—जो मेरा है, वह मेरा ही रहेगा। जो मेरा है; उसे मैं कभी दूसरे के हाथ में न जाने दूँगा।

जरासंध : *कौन दूसरा ?*

कृष्ण : *कालयवन।*

कौशिक : *कृष्ण, क्या तुम्हें भी इसका पता चल गया ?*

शाल्वराज : *देखिये, कैसे सिद्ध-साधक बन रहे हैं ?*

जरासंध : *आप चुप रहें शाल्वराज !*

कृष्ण : *राजा जरासंध, ? क्यों अपने-आप पर यह विपत्ति बुला रहे हो।*

जरासंध : *अपने-आप पर !*

कृष्ण : *हाँ, हाँ। अपने आप पर !*

जरासंध : *तेरे विनाश के लिए ही बुला रहा हूँ कालयवन को। यह एक अमोघ अस्त्र है। शङ्कर जी के वरदान से कालयवन मथुरा का विध्वंस करेगा। उस भय से तू काँप उठा है। और अब अपनी भीरुता पर परदा डालने के लिए मेरे प्रति सहानुभूति दिखाने का ढोंग कर रहा है, क्यों रे ग्वाले के छोकरे !*

कृष्ण : *यदि मैं भीरु होता तो सत्रह बार तुम्हें न हराता।*

जरासंध : *फिर क्यों भाग गया था गोमंत पर्वत पर ?*

कृष्ण : *मैं नहीं चाहता था कि निरपराध मनुष्यों का संहार हो।*

जरासंध : *ये निरपराधी मनुष्य कौन थे ?*

कृष्ण : *तुम्हारी इक्कीस अक्षौहिणी सेना के सैनिक । क्या अपराध किया था उन सैनिकों ने? उन्हें तुम क्यों शत्रु के मुँह में डाल रहे थे ? क्यों नाश कर रहे थे उन असंख्य सैनिकों का ? इस अकारण नर-संहार को रोकने के लिए ही मैं गोमंत पर्वत पर चला गया था । तुम ने उस पर्वत में आग लगा दी । तुम्हें लगा, हम दोनों भाई उस अग्नि में जलकर भस्म हो जायेंगे । परन्तु अन्त में जब द्वन्द्वयुद्ध हुआ तो उसमें तुम परास्त हो गये । मेरा कार्य सिद्ध हो गया । युद्ध टल गया । इक्कीस अक्षौहिणी सेना बच गयी और तुम भी हार कर भाग गये । अपनी असमर्थता का ज्ञान हो जाने के कारण···*

जरासंध : *कौन कहता है कि मैं असमर्थ हूँ ?*

कृष्ण : *मैं कहता हूँ । यदि तुम असमर्थ न होते तो क्या इस प्रकार एक विदेशी यवन से सहायता की भीख माँगते ?*

जरासंध : *यदि कोई असमर्थ है तो तू ही है । यह ज्ञात होते ही कि कालयवन अजेय है, तू घबराकर यहाँ आया है···*

कृष्ण : *यदि घबराया होता तो तुम जैसे हिंसक व्यक्ति के सामने इतनी निर्भयता से आकर क्यों खड़ा हो जाता ? और वह भी एकदम अकेला ! किसी का भी सहारा न होते हुए भी मैं अकेला यहाँ आकर जो तुम्हारे सामने खड़ा हूँ, सो केवल तुम्हारे कल्याण के लिए ही···*

शाल्वराज : लो, सुन लो इस ग्वाले की डींग। यह कल्याण करेगा राजा जरासंध का !

कृष्ण : हाँ, हाँ, मैं ही करनेवाला हूँ इनका कल्याण ! राजा जरासंध, कालयवन को भारत पर आक्रमण करने का आमंत्रण देते समय क्या तुमने अपने बारे में भी कुछ सोचा था ? कालयवन ने यदि मथुरा पर आक्रमण कर दिया तो निश्चित ही वह मथुरा को जीत लेगा। पर क्या तुम सोचते हो कि मथुरा को जीतने के पश्चात वह चुप बैठ जायगा ? विजय के उन्माद से वीरों की भूख भड़क उठती है, और जब उस भूख की ज्वाला भड़केगी तब तुम कैसे कह सकते हो कि वह मथुरा के साथ मगध देश को भी नहीं निगल जायगी ? मगध देश ही क्यों ? अंग, बंग, कलिंग, विदर्भ आदि देश जीतने की भी उसे इच्छा न होगी, यह हम कैसे कह सकते हैं ? यदि वह सम्पूर्ण भारतवर्ष को ही जीतने लगे तो तुम क्या कर सकते हो ? शत्रु हो तो तुम मेरे शत्रु हो; और अपने शत्रु की मैं स्वयं ही हराऊँगा—उसे विदेशी के हाथ में नहीं जाने दूँगा। यदि मरना ही है तो आओ हम दोनों मिलकर कालयवन का सामना करें। हम दो की शक्तियाँ मिल जाने पर···

जरासंध : चुप रह। तेरी चाल मैं समझ गया। इसके आगे मैं तेरा एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता। यदि इसी समय तू यहाँ से नहीं चला गया तो गृहस्थ के सारे धर्म भूल मैं तुझे कैद कर लूँगा।

कृष्ण : *मुझे भी कौन यहाँ रहना है? जो कहना चाहता था, कह चुका। सुनो, चाहे न सुनो। आगे जो होगा, उसका सारा दायित्व अब तुम पर है। अंत में एक बात और कहे देता हूँ—कालयवन मथुरा के लिए अवध्य अवश्य है, पर मैं तुम्हें जताये देता हूँ कि मथुरा की सीमा के भीतर प्रवेश करने से पहले ही उसका विनाश होगा।* (जाता है।)

जरासंध : *सुन लिया शाल्वराज? समझ गए, कालयवन से क्या सन्देशा कहोगे?*

कौशिक : *जरासंध, यह बूढ़ा एक अंतिम बात और कहना चाहता है, उसे सुन। नवयुवक की बात का तुमने कोई मूल्य नहीं किया परन्तु इस बूढ़े की बात ठुकरा कर आत्मघात न करो—मान जाओ। सारे भारत के विनाश की नींव न खोदो।*

जरासंध : *जो उत्तर मैंने नवयुवक को दिया है वही उत्तर वृद्ध के लिए भी है। मैं ने जो निश्चय कर लिया है, वह अटल है। अब उसे बदलना सम्भव नहीं··· फिर चाहे मेरा विनाश ही क्यों न हो जावे, मुझे इसकी चिन्ता नहीं। जाइए शाल्वराज, आप को जो अनमोल काम सौंपा गया है उसे पूरा कीजिए और यशस्वी होकर लौटिए।*

रुक्मी : *मगधाधिपति जरासंध की जय!*

(परदा गिरता)

●

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[भूगर्भ में तैयार किया हुआ निवासस्थान। परदे के उठते ही सुनीता ऊपर के मार्ग से नीचे उतर कर आती है। वह इधर-उधर देखती है। इसी समय दूसरी ओर से गर्ग मुनि प्रवेश करते हैं।]

गर्ग मुनि : *कौन है री तू ? मथुरा की तो नहीं जान पड़ती !*

सुनीता : *हाँ मुनिराज, मथुरा की नही हूँ मै !*

गर्ग मुनि : *तो फिर कहाँ की है ? यहाँ कैसे आयी ?*

सुनीता : *कुंडिनपुर की दासी हूँ मैं। बलराम महाराज के लिए दन्तवक्त्र महाराज का सँदेशा लेकर आयी थी यहाँ।*

गर्ग मुनि : *फिर यहाँ क्या कर रही है अभी तक ? अपने देश को क्यो नहीं लौट गयी ?*

सुनीता : *वहाँ जाने को जी नहीं चाहता मेरा।*

गर्ग मुनि : *जी क्यों नहीं चाहता ?* (वह चुप रहती है।) *यह महान सङ्कट का समय है। मथुरा पर विपत्ति के बादल मँडरा रहे हैं। इस राज्य पर विदेशी का आक्रमण हो रहा है। ऐसे समय दूसरे राज्य के लोगों पर कड़ी दृष्टि रखनी पड़ती है···*

सुनीता : *मैं ही लायी थी वह समाचार···*

गर्ग मुनि : *तब तो तुझ पर और भी अधिक कड़ी दृष्टि रखने की आवश्यकता है। यदि दूसरे राज्य के लोग इस राज्य में आवें, तो उनमें शत्रु और मित्र का भेद-भाव करने से इस समय काम नहीं चलेगा। पराये राज्य के जितने भी लोग हैं, वे सब इस समय हमारे लिए पराये ही है।*

सुनीता : *नहीं मुनिराज, मैं उनमें से नहीं हूँ। कुण्डिनपुर से यहाँ आयी थी। यहाँ मेरा मन रम गया। ऐसा लगने लगा कि अब शेष जीवन श्रीकृष्ण जी की छत्र-छाया में ही व्यतीत करूँ—ऊब उठी थी उस कुण्डिनपुर से…*

गर्ग मुनि : *क्यों ऊब गयी थी? जो स्वदेश से ऊब जाते हैं, वे बड़े विश्वासघाती होते हैं।*

सुनीता : *पुनः निवेदन करती हूँ कि मैं उनमें से नहीं। स्वदेश से ऊब जाने का मेरा कारण रुक्मी का शासन है। भीष्मक राज तो बड़े सज्जन हैं, बड़े उदार हैं। परन्तु पुत्र के आगे उनकी कुछ नहीं चलती। स्वयंवर भङ्ग होने के बाद से रुक्मी तो जैसे पागल हो गया है। अपनी बहन पर भी संदेह करता है। मैं रुक्मिणी देवी की दासी हूँ। इसीलिए वहाँ रहने से ऊब उठी। यहाँ आने का अवसर मिल गया—चली आयी। यहाँ का वातावरण देखकर बहुत आनन्द हुआ। लौट कर जाने की इच्छा ही नहीं हुई। रेवती देवी ने आश्रय दे दिया…*

गर्ग मुनि : *रेवती ने आश्रय दिया !*

सुनीता : *हाँ, मुनिराज !*

गर्ग मुनि : *यह उचित नहीं हुआ ।*

सुनीता : *क्यों, मुनिराज !*

गर्ग मुनि : *तू यह नहीं समझ सकेगी। यहाँ का वातावरण देखकर तुझे अनन्द हुआ, वह इसलिए हुआ कि तू केवल ऊपर-ऊपर ही देख रही है। यहाँ का वातावरण भी दूषित हो गया है। विदेशी के आक्रमण के भय से सज्जनों के मन भी शंकालु हो उठे हैं। क्या तू कुंडिनपुर वापस जाना चाहती है ?*

सुनीता : *नहीं, मुनिराज !*

गर्ग मुनि : *परन्तु यह बता कि यहाँ, इस स्थान पर, कैसे आ पहुँची तू ? कालयवन के भय से सारी मथुरा इस भूगर्भ में रहती है। भूगर्भ के इस सबसे गुप्त स्थान में तू कैसे आ पहुँची ?*

सुनीता : *घूमती हुई यहाँ भूल से आ गयी, मुनिराज !*

गर्ग मुनि : *भूल से गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाने वाले व्यक्ति पर संदेह करने का समय है यह !* (चारों ओर दृष्टि घुमाकर) *वे लोग इस समय क्यों नहीं आये ?*

सुनीता : *इस ओर कोई भी मुड़ा ही नहीं था ।*

गर्ग मुनि : *मैंने तुझसे नहीं पूछा ! तू यहाँ से भाग जा और यहाँ फिर कभी फटकना भी नहीं ।*

सुनीता : *जो आज्ञा, मुनिराज !* (गर्ग मुनि के चरणों पर मस्तक

रखकर प्रणाम करती है और चल देती है। क्षण-भर के लिए अस्वस्थ होकर गर्ग मुनि उस रास्ते की ओर देखते हैं जिससे वे स्वयं आये थे। कृष्ण आते हैं। आते ही मुनि के चरणों में मस्तक झुका कर प्रणाम करते हैं।)

गर्ग मुनि : *उठो कृष्ण ! मैं तुम्हारी प्रतीक्षा ही कर रहा था। कुंडिनपुर की एक दासी अभी यहाँ आयी थी। वह यहाँ कैसे आयी ? मुझे तो हवा के रुख पर भी सन्देह होने लगा है। और यह तो थी कुंडिनपुर की दासी !*

कृष्ण : *क्या वह अभी तक कुंडिनपुर वापस नहीं गयी ?*

गर्ग मुनि : *रेवती ने रख लिया है उसे अपने पास। बलराम तो इतना संशयालु है कि जिसका कोई ठिकाना नहीं और उसकी पत्नी है ऐसी भोली। क्या रेवती को इतना भी ज्ञान नहीं कि इस विकट प्रसङ्ग पर कितनी सावधानी बरतनी चाहिए ?*

कृष्ण : *मैं पूछ-ताछ करूँगा इसकी।*

गर्ग मुनि : *केवल पूछ-ताछ करना ही पर्याप्त न होगा। समय बड़े सङ्कट का है। यहाँ के समाचार के लिए हमारे शत्रु घात में बैठे होंगे। बलराम पहले से ही मुझ पर सन्देह कर रहा है ···*

कृष्ण : *इस समय दादा के बर्ताव की ओर हमें विपेश ध्यान नहीं देना चाहिए बल्कि उनके साथ युक्ति-सङ्गत विवाद करना चाहिए। परन्तु युक्ति-सङ्गत बात का भी उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जो एक बार*

उनके मन आ गया सो आ गया—फिर वे उसी पर अटल रहते हैं। अब यही देखिए, हम लोगों ने इस भू-गर्भ में रहने का निश्चय किया था, लेकिन उन्हें यह बात ठीक नहीं जँची थी। केवल भोजराज की आज्ञा के कारण उन्होंने अपनी स्वीकृति दी थी। इससे अधिक विकट प्रसङ्ग तो आगे आने वाला है। मथुरा की सीमा के भीतर यदि कालयवन पहुँच गया तो फिर मथुरा की दुर्दशा ही समझिए। फिर मथुरा की भूमि क्या और भू-गर्भ क्या—दोनों बराबर ही हैं।

गर्ग मुनि : तुम्हारी योजना ही ठीक है कृष्ण ! समुद्र-नगरी का कितना काम हो गया है ?

कृष्ण : विश्वकर्मा ने आज ही बताया कि नगरी तैयार है। अब इस सारी मथुरा को ले जाकर नयी स्थापित की हुई द्वारका में बसाने का काम भर रह गया है।

गर्ग मुनि : क्या बलराम को मालूम हैं ये सब बातें ?

कृष्ण : अभी तक मैंने उन्हें पता नहीं चलने दिया था। मेरी बात उन्हें कभी जँचती ही नहीं है। इसलिए भोज-राज से अभी हाल ही में कह कर आया हूँ और इसीलिए मुझे यहाँ आने में विलम्ब हो गया। प्रश्न है केवल एक ही—कालयवन को कैसे रोकें ?

गर्ग मुनि : इसकी चिन्ता तुम न करो।

कृष्ण : ऐसा क्यों कहते हैं, मुनिराज ! मथुरा पर मेरे कारण ही यह सङ्कट आया है। यदि कल मथुरा का विध्वन्स

हो जाता है तो उसका पाप मेरे सिर ही होगा। और मैं भी कहाँ रहूँगा उस समय ? मथुरा का विध्वन्स सारे यादव-कुल का ही विध्वन्स है...

गर्ग मुनि : क्यों ऐसे अशुभ विचार अपने मन में लाते हो ? जब तक मेरे तन में प्राण हैं, तब तक मथुरा का विध्वन्स नहीं हो सकता।

कृष्ण : परन्तु शङ्कर जी का वरदान !

गर्ग मुनि : आखिर मैंने ही तो प्राप्त किया है न ? उस वरदान का शमन भी मेरे ही हाथ में है। वह अन्तिम उपाय करने का समय अब निकट आ गया है। आज ही उसका अन्तिम निर्णय हो जाना चाहिए। आज ही नहीं—इसी समय। इसी क्षण सारी मथुरा को समुद्र-नगरी में ले जाना चाहिए। विश्वकर्मा के विमान तैयार हैं। (क्षण-भर रुक कर) क्या करूँ कृष्ण ? बलराम के वाग्बाणों से मेरा हृदय चलनी हो गया है। उसका यह संदेह दूर होना ही चाहिए। मुझे जरासंध का यह दाँव इसी समय उलटना ही पड़ेगा।

कृष्ण : दादा यहीं आ रहे हैं अभी।

गर्ग मुनि : बलराम यहाँ आ रहा है ? अभी ? इसी समय ? तो मुझे यहाँ से चल देना चाहिए अब। यदि मुझे देख लेगा तो फिर से बिगड़ उठेगा। अब एक काम करो, कृष्ण ! मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है। सारी मथुरा नगरी को यहाँ से हटा देना होगा। बलराम

बड़ा हठीला है। सम्भवतः वह यह बात स्वीकार नहीं करेगा। जैसे भी हो, तुम उसको समझा-बुझाकर राजी करो और मथुरा तुरन्त खाली कर दो। मैं अब चलता हूँ।

कृष्ण : कहाँ?

गर्ग मुनि : इस समय मैं यह तुम्हें नहीं बताता। तुम लोग बिल्कुल निर्भय रहो। समय पर ही सचेत रहना अच्छा होता है। केवल इसीलिए मैं तुमसे मथुरा खाली कर देने के लिए कह रहा हूँ। बस, इससे अधिक अब मुझ से कुछ न पूछो। मैं जा रहा हूँ। (वे जाने लगते हैं। कृष्ण उनके चरणों पर मस्तक झुका देता है।)

कृष्ण : जरासंध को चुनौती दे आया हूँ मैं। अब मेरी लाज आपके ही हाथ है, गुरुजी···

गर्ग मुनि : तुम इसकी चिन्ता न करो। मुझ पर पूरा विश्वास रख कर आगे के कार्य में जुट जाओ। तुम्हारा कल्याण हो।

(दूसरी ओर से जाते हैं। जिस तरफ से कृष्ण आये थे, उसी तरफ से अश्विनी प्रवेश करती है।)

अश्विनी : क्या गुरुजी चले गये? कहाँ गये?

कृष्ण : मैं क्या जानूँ?

अश्विनी : अभी तुम्हीं से तो बातें कर रहे थे न वे?

कृष्ण : तो क्या तुम सोचती हो कि मेरे यहाँ रहते हुए क्या वे अपने-आप से ही बातें करेंगे?

अश्विनी : सीधा उत्तर क्यों नहीं देते।

कृष्ण : कह तो दिया कि मैं नहीं जानता। उन्होंने मुझसे कुछ कहा ही नहीं तो मैं क्या बताऊँ तुम्हें ?

अश्विनी : तो ऐसा क्यों नहीं कहते कि मैं तुम्हें नहीं बताना चाहता।

कृष्ण : तुम्हें मैं क्यों नहीं बताऊँगा ? तुम कोई दादा तो हो नहीं। दादा से बात करते समय मुझे संयम का पालन करना पड़ता है। उनसे एक-एक शब्द नाप-तौल कर बोलना पड़ता है। तुम दादा के समान कोई शंकालु तो हो नहीं। मुझे यदि कुछ मालूम होता तो मैं तुमसे वह क्यों छिपाता ?

अश्विनी : तो मतलब यह हुआ कि सचमुच तुम कुछ नहीं जानते।

कृष्ण : तुम से पुनः कहता हूँ कि सचमुच मैं कुछ नहीं जानता। गुरुजी ने कोई योजना अवश्य बनायी है, इसमें सन्देह नहीं। उन्होंने हमें आश्वासन भी दिया है। परन्तु वे क्या करने वाले हैं, इसका उन्होंने मुझे आभास तक नहीं होने दिया। वे केवल यही आज्ञा दे गये हैं कि मथुरा को इसी समय खाली कर दो।

अश्विनी : मथुरा खाली करके जायेंगे कहाँ ?

कृष्ण : वह तो अब तुम्हें अपने-आप ही मालूम हो जायेगा। उन्होंने कहा है कि इस भू-गर्भ में रहना भी खतरे से खाली नहीं है।

अश्विनी : *क्या दादा को मालूम है यह सब ?*

कृष्ण : *अब यही सब मैं उनसे कहने वाला हूँ। देखो अश्विनी, वह कुंडिनपुर की दासी अभी तक क्यों है यहाँ ?*

अश्विनी : *क्या तुम उस पर सन्देह करते हो ?*

कृष्ण : *मैं नहीं, गुरुजी करते हैं। कुछ भी हो, आखिर है वह रुक्मी के घर ही की···*

अश्विनी : *दन्तवक्त्र ने भेजा था उसे···*

कृष्ण : *फिर भी है तो वह रुक्मी के ही पक्ष की। रेवती भाभी ने उसे क्यों रख लिया अपने पास ?*

अश्विनी : *बहुत गिड़गिड़ा रही थी वह···*

कृष्ण : *ऐसे गिड़गिड़ाने वाले लोग कभी-कभी बड़े घातक सिद्ध होते हैं ! दादा की तरह यदि भाभी भी संशयालु होतीं, तो बड़ा अच्छा होता। चाहे प्रत्यक्ष भले ही न हो, किन्तु छिपे-छिपे वह धोखे का कारण हो सकती है। हमने अब मथुरा खाली करने का निश्चय किया है। बताओ, उसका अब क्या करोगी ?*

अश्विनी : *लेकिन तुम क्या सोचते हो।? तुम्हारा क्या कहना है ?*

कृष्ण : *मुझे कुछ भी नहीं कहना है। तुम्हीं लोगों ने उसे रख लिया है। उसका क्या किया जाय, यह भी तुम्हीं निश्चित करो।*

(भीतर से रोष भरे स्वर में बलराम 'कृष्ण कहाँ है ?' दहाड़ता हुआ बाहर आता है।)

बलराम : *यहाँ हो तुम ! ये क्या षड्यन्त्र रचे जा रहे हैं ? कुछ-न-कुछ षड्यन्त्र रचे बिना क्या तुम्हें चैन ही नहीं पड़ती ? कहाँ है वह नगरी ? किस जगह बसायी है ? किसने बसायी है ? क्यों बसायी है ? अपनी इस मथुरा को छोड़ कर हम क्यों समुद्र-पार जायें ? पहले ऐसा कभी हुआ था क्या ? हमें किस का भय है ?*

कृष्ण : *कालयवन का !*

बलराम : *कौन है यह कालयवन ? उससे हम क्यों डरें ? क्या हम कायर हैं ? भीरु हैं ? क्या मथुरा निर्वीर हो गयी है ? कंस का नाश किया, सत्रह बार जरासंध को धूल चटायी, तो क्या इसलिए कि हम भीरु थे…*

कृष्ण : *गोमंत पर भाग गये थे हम !*

बलराम : *तुम्हारी बातों में आकर। तुम्हारे ही दुराग्रह पर। नर संहार तुम से देखा नहीं जाता न ? हम क्षत्री के बेटे हैं, मरने से क्यों डरें ?*

कृष्ण : *हम कहाँ मरने से डरे थे ? क्या हमने जरासंध से सत्रह बार बाहु-युद्ध नहीं किया ? परन्तु अकारण ही नर-संहार क्यों करते ? हमारे सैनिकों का क्या अपराध था ? जरासंध ने उनका क्या बिगाड़ा था ? उनके प्राण क्यों जायें ? आपसी बैर के लिए प्रजा का नाश क्यों हो ?*

बलराम : *वे सैनिक क्षत्री के बेटे हैं। अपने राज्य की रक्षा के लिए प्राण हथेली पर लेकर वे स्वेच्छा से लड़ने*

निकल पड़े थे। उन पर किसी ने कोई जबरदस्ती नहीं की थी।

कृष्ण : क्या वह जबरदस्ती नहीं थी ? फिर वे क्यों निकल पड़े थे लड़ने को ? बताइए न ? हमारी ही आज्ञा से तो वे निकल पड़े थे न ? राजाज्ञा का अर्थ ही जबरदस्ती है।

बलराम : मुझे तुम्हारे इस नये तत्त्वज्ञान की आवश्यकता नहीं। राज्य की रक्षा के लिए प्रजा को भी अपने प्राण दे देना चाहिए, यह अनादि काल से चला आ रहा सिद्धान्त है।

कृष्ण : राज्य की रक्षा के लिए ? लेकिन वहाँ राज्य का तो कोई प्रश्न ही न था। जरासंध की शत्रुता, व्यक्तिगत हमसे—विशेषतः मुझसे थी। एक साधारण व्यक्ति के लिए सारे सैनिक क्यों अपने प्राण दें ? मैं अपनी रक्षा करने के लिए स्वयं समर्थ था। जरासंध की दृष्टि में अपराध मेरा था। मेरे अपराध के लिए बेचारे मथुरा के सैनिकों के प्राण क्यों जायें ?

बलराम : तुम्हारा यह तर्क मुझे नहीं जँचता। मैं तो एक सीधा-सादा सिपाही हूँ। मैं भागूँगा नहीं। तुमसे पुनः कहे देता हूँ कि आज तक तुम्हारे तर्क मैंने सुने, उसका मुझे पश्चाताप हो रहा है। अब आगे मैं तुम्हारा कोई तर्क नहीं सुनूँगा। जो होना हो, हो जाय। मैं इस भू-गर्भ में भी न रहूँगा। मैं कालयवन का रण-क्षेत्र में सीधा सामना करूँगा।

अश्विनी : दादा, यह क्या कह रहे हैं आप? कालयवन को शङ्कर जी का वरदान प्राप्त है।

बलराम : तुम चुप रहो। मुझे स्त्रियों की सलाह की आवश्यकता नहीं। मुझे न स्त्रियों की सलाह की आवश्यकता है और न बच्चों की। शङ्कर का वरदान प्राप्त है तो रहा आये। क्या होगा? मथुरा का विध्वन्स ही होगा न?—बस, यही न? तो फिर हो जाने दो विध्वन्स···

कृष्ण : इससे क्या होगा?

बलराम : कम-से-कम संसार यह तो कहेगा कि हम लोग वीर की तरह मरे!

कृष्ण : परन्तु जो वीर नहीं हैं, उन्हें वीरों के अभिमान के लिए क्यों मरना चाहिए? और विध्वन्स से क्या प्राप्त होगा? शत्रुओं ने यह चाल चली है कि मथुरा का विध्वन्स हो। यदि मथुरा के यादवों का नाश हो गया तो हमारे शत्रुओं की वह जीत होगी। क्या हमारे दादा यही चाहते हैं कि शत्रु की जीत हो? वीरता के अभिमान के लिए क्या आप अपने शत्रुओं को जिता देंगे?

बलराम : तो फिर तुम्हारा क्या कहना है?

कृष्ण : पीछे हटना भी युद्ध की एक चाल होती है। उचित अवसर प्राप्त करने के लिए यदि हम पीछे हट जाते हैं तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि हम में वीरता का अभाव है। युद्ध में शक्ति की तरह युक्ति से भी

काम लेना पड़ता है। लक्ष्य होना चाहिए विजय पर, युद्ध पर नहीं। जिस मार्ग से विजय प्राप्त हो, वही सच्चा मार्ग है।

बलराम : (दाँत पीसकर) राजगुरु ! बड़े राजगुरु बनते हैं ? इन गुरुजी की स्वार्थ-सिद्धि के लिए ही हम यादवों के माथे पर कलङ्क का टीका लगेगा।

अश्विनी : दादा, यह क्या कह रहे हैं आप ?

बलराम : तुम से एक बार कह दिया न कि चुप रहो।

अश्विनी : नहीं दादा, मैं स्त्री हूँ, मूर्ख हूँ। फिर भी स्त्री-जाति का जो कर्त्तव्य है उसे मैं अवश्य करूँगी। मैं यादव-कन्या हूँ। गुरुजी पर आपका सन्देह निराधार है। इस सन्देह से यादव-वंश का नाश हो जायेगा···

बलराम : हर कोई मुझे सिखाने लगा है ! यह मैं कैसे सहन करूँ ? जब आपत्ति-काल आता है, तो अपने भी पराये हो जाते है, वीरों को भी शस्त्र नीचे रख देने पड़ते हैं, रणभूमि से भाग जाना पड़ता है। बोलो कृष्ण, क्या आज्ञा है तुम्हारी ?

कृष्ण : ऐसा क्यों कह रहे हैं, दादा ! जेठे-सयानों को आज्ञा देने का मुझे अधिकार नहीं। मैं प्रार्थना करता हूँ, विनती करता हूँ। (गिड़गिड़ाकर) आप के चरण छू कर निवेदन करता हूँ कि नर-संहार टालने के लिए क्षण-भर के लिए हमें पीछे हट जाना चाहिए।

बलराम : (कृष्ण को उठाकर दृढ़ आलिंगन करता हुआ गद्गद् स्वर में) ऐसा न कहो कृष्ण, जब तुम ऐसा कुछ कह

देते हो तो मेरा हृदय पानी-पानी हो जाता है। बताओ, मैं क्या करूँ ?

कृष्ण : विश्वकर्मा ने पूरी नगरी तैयार कर ली है। समुद्र के भीतर बसायी गयी उस नगरी में कुछ समय तक हमें आश्रय लेना होगा। गुरुजी को बदनाम न कीजिए दादा !—उन पर सन्देह न कीजिए। उनका अभय हस्त है हम पर—उन्हीं की कृपा से इस अमोघ सङ्कट का निवारण होगा। उस समय आप मेरी पीठ ही ठोंकेंगे।

(सुनीता हाँफती हुई दौड़कर प्रवेश करती है। मुँह से बोलना भी उसके लिए कठिन हो रहा है।)

सुनीता : आ गये—आ गये—बिल्कुल द्वार तक आ गये।

बलराम : कौन,—कौन आ गये ?

कृष्ण : क्या कालयवन आ गया ?

सुनीता : नहीं-नहीं—जरासंध और रुक्मी···

बलराम : (सुनीता की गर्दन पकड़ कर) तू-तूने किया है यह विश्वासघात !—तूने ही यह समाचार भेजा है वहाँ।

सुनीता : (गिड़गिड़ाती हुई) नहीं महाराज, मुझ पर यह सन्देह न करें। जो सच है, वही मैं कह रही हूँ।

कृष्ण : सच-झूठ की छानबीन की इस समय आवश्यकता नहीं। चलिए दादा—चलो अश्विनी ! (सुनीता से) किस तरफ से आ रहे हैं वे लोग ?

सुनीता : (जिस तरफ से वह आयी थी उसी ओर अँगुली दिखा-कर) *इस रास्ते से…*

कृष्ण : *चलो, तो हम दूसरे रास्ते से चलें।*

बलराम : (सुनीता से) *तू यहीं रह…*

अश्विनी : *वे चांडाल यहाँ आ रहे हैं न ? फिर इसे यहाँ क्यों छोड़ते हैं ?*

बलराम : *हाँ, हाँ ! मैं भी जानता हूँ कि वे यहाँ आ रहे हैं। पर भोगने दो इसे अपने कर्मों का फल। खबरदार, अगर हम लोगों के साथ आयी तो। चल कृष्ण।*

(कृष्ण, बलराम और अश्विनी जिस रास्ते से आये थे उसी रास्ते से चल देते हैं। सुनीता घबरा कर इधर-उधर देखती हुई घूमने लगती है। इसी समय जरासंध और रुक्मी प्रवेश करते हैं। उन्हें देखकर सुनीता एक कोने में छिपने का प्रयत्न करती है।)

जरासंध : *यहाँ तो सन्नाटा है। कोई भी नहीं दिख रहा है। सारी मथुरा वीरान पड़ी हुई है। कहाँ चले गये ये सब ?*

रुक्मी : *भूमि के गर्भ में मुँह छिपाये बैठे थे। यादवों की कायर जाति तो ठहरी ! भाग गये बेटे यहाँ से ! अब इस मथुरा नगरी पर हमारा अधिकार हो गया।*

जरासंध : *केवल मथुरा पर अधिकार हो जाने से क्या लाभ है ? कहाँ गये कृष्ण और बलराम ? कहाँ गया राजा उग्रसेन ? कहाँ गया वासुदेव ? इस वीरान भूमि को*

लेकर क्या करूँगा मैं ? मुझे बदला लेना है···अपने दामाद के हत्यारे से बदला लेना है। केवल मथुरा पर अधिकार हो जाने से मुझे सन्तोष न होगा। (इधर-उधर देखता है तो उसे सुनीता दिख जाती है।) कौन है यह ? कौन है तू ?

सुनीता : (घबराती हुई आगे बढ़कर) मैं···मैं···मैं···

जरासंध : मैं···मैं···मैं क्या कह रही है ? कौन है तू ?

रुक्मी : कौन ! कौन ? सुनीता ? यह तो हमारे यहाँ की दासी है। कुंडिनपुर की दासी···यह यहाँ कैसे पहुँची ? बोल, तू यहाँ कैसे आयी ? क्यों आयी ?

सुनीता : मैं···मैं···मैं नहीं जानती—मैं नहीं जानती।

जरासंध : क्या नहीं जानती ?

सुनीता : मैं यहाँ कैसे आयी, यह मैं नहीं जानती।

रुक्मी : झूठ बोलती है। बता तू यहाँ कैसे आयी ? किसने भेजा तुझे ? किस का सन्देश लेकर आयी थी ? विश्वासघात करने आयी थी न ?

सुनीता : मैं कुछ नहीं जानती महाराज···बिल्कुल सच कह रही हूँ मैं···

जरासंध : कब से है तू यहाँ ? और कौन-कौन थे यहाँ ?

सुनीता : यहाँ तो कोई नहीं था। जाने किसने मुझे इस सुरङ्ग में लाकर छोड़ दिया है।

जरासंध : सच बोल। बातें न बना। साफ दिख रहा है कि तू सरासर झूठ बोल रही है। क्या यहाँ कोई नहीं

था ? क्या कृष्ण और बलराम यहाँ नहीं थे ? कहाँ गये वे ? बोल ।

सुनीता : मैं कुछ नहीं कह सकती महाराज कि मुझे क्या हो गया ? यहाँ कोई नहीं था । मैं बिल्कुल घबरा गयी हूँ ।

रुक्मी : अब सीधी तरह से सब कुछ सच-सच कह दे, नहीं तो तेरी दुर्गति की जायगी ।

सुनीता : जो सच है, वही तो कह रही हूँ महाराज ! आप मुझे क्यों व्यर्थ तङ्ग कर रहे हैं ? जाने किसने कहाँ से लाकर मुझे इस भयानक जगह में फेंक दिया है । मैं कुछ भी नहीं समझ पा रही हूँ । कहाँ आ गया हूँ मैं ? क्या यह कुंडिनपुर नहीं है ?

रुक्मी : ऐसे ढोंग करना किसने सिखाया है तुझे ? फिर कहता हूँ, सच-सच बोल दे···कहाँ गये हैं कृष्ण और बलराम ?

सुनीता : अब मैं आप को कैसे विश्वास दिलाऊँ ? कौन कृष्ण और कौन बलराम ? कृष्ण और बलराम तो मथुरा में हैं, इस कुंडिनपुर में वे कैसे आयेंगे, महाराज ! हाँ, कृष्ण कुंडिनपुर आया था···स्वयंवर के लिए । लेकिन वहाँ उसकी कोई दाल न गली इसलिए वह लौट गया था ।

जरासंध : कहीं यह पगली तो नहीं है ?

रुक्मी : पगली कैसी ? ढोंगी है—ढोंग कर रही है । हमें धोखा दे रही है । हमें यहीं उलझाये रखना चाहती

है—जानबूझ कर बन रही है। बता, यहाँ से बाहर जाने का मार्ग कहाँ है ?

सुनीता : मैं क्या जानूँ ? जब मैं यही नहीं जानती कि यहाँ कैसे आ गयी, तब यहाँ से बाहर जाने का मार्ग आप को कैसे दिखाऊँ ?

जरासंध : यह कोई विचित्र षड्यंत्र दिख रहा है। कृष्ण और बलराम निश्चित ही यहीं कहीं होंगे। एक क्षण में सारी नगरी वीरान कैसे हो गयी ? कहाँ चले गये ये यादव के बच्चे ? ये लोग एकदम कहाँ विलुप्त हो गये ! जासूस ने हमसे यही कहा था न कि कालयवन मथुरा की सीमा पर आ गये हैं।

रुक्मी : हाँ, यही तो कहा था उसने। शाल्वराज उसका स्वागत करने आगे गये हुए हैं। यदि मथुरा वीरान हो गयी है तो हो जाने दीजिए। हम यहाँ नया नगर बसा देंगे, नयी सृष्टि निर्मित कर देंगे और कालयवन को मथुरा का राजतिलक कर देंगे।

जरासंध : क्या कालयवन को हमने मथुरा का राजा बनाने के लिए यहाँ बुलाया है ?

रुक्मी : तो फिर किस लिए बुलाया है ?

जरासंध : यादवों का नाश करने के लिये ! जहाँ यादवों का नाश हुआ तो फिर मथुरा के सिंहासन पर बैठेगा यह जरासंध—मगधेश की तरह जरासंध मथुरेश भी बनेगा।

रुक्मी : और कालयवन ?

(भीतर से 'जल गया—भस्म हो गया' की आवाज सुनायी पड़ती है।)

जरासंध : *कौन जल गया—कौन भस्म हो गया?*

(शाल्वराज का प्रवेश। वह घबराया हुआ है। उसकी घिघ्घी बँध गयी है।)

शाल्वराज : *जल गया! भस्म हो गया!*

जरासंध : *कौन?*

शाल्वराज : *कालयवन!*

जरासंध : *कालयवन जलकर भस्म हो गया! तुम कहीं पागल तो नहीं हो गये हो, शाल्वराज?*

शाल्वराज : *मैंने अपनी आँखों से देखा है। मेरी आँखों के सामने खड़ा-खड़ा भस्म हो गया कालयवन। अब राख का ढेर पड़ा है वहाँ।*

(सुनीता—'कालयवन जलकर भस्म हो गया, कालयवन जलकर भस्म हो गया?' चिल्लाती हुई वहाँ से भाग जाती है।)

शाल्वराज : *यह कौन चिल्लाया?*

रुक्मी : *वह एक पगली है। मरने दो उसे। पहले यह बताओ कि कालयवन का क्या हुआ? मथुरा की सीमा के भीतर तो पहुँच गया था न वह?*

शाल्वराज : *हाँ, मथुरा की सीमा पर खड़ा था कालयवन।*

जरासंध : *मथुरा की सीमा पर खड़ा था! मथुरा की सीमा के भीतर क्यों नहीं घुसा वह?*

शाल्वराज : वह रोक दिया गया।

जरासंध : किसने रोका उसे ? कृष्ण ने ? नहीं ! क्या बलराम ने ? नहीं ! तो क्या यादव-सेना ने ?

शाल्वराज : यादवों का तो वहाँ कोई पता ही न था।

जरासंध : फिर किसने रोका कालयवन को ? मथुरा के लिए अजेय और अवध्य कालयवन के मार्ग में किसने रुकावट डाली ? शङ्कर के वरदान से जो यादवों को नष्ट करने की सामर्थ्य रखता है, उस कालयवन को किसने रोक लिया मथुरा की सीमा पर ?

शाल्वराज : उसके पिता ने।

जरासंध : (जोर से चिल्लाकर) उसके पिता ने ? क्या गर्गाचार्य ने रोका उसे !

शाल्वराज : हाँ, मगधेश।

जरासंध : जरासंध के बीच में आ जाने से क्या कालयवन पीछे हट गया ?

शाल्वराज : नहीं मगधेश···

जरासंध : तो फिर क्या हुआ ? कैसे हुआ ?

शाल्वराज : साक्षात गर्ग मुनि को सामने देखते ही कालयवन क्षण-भर के लिए पीछे हटा···

जरासंध : भीरु कहीं का ?

शाल्वराज : कुछ भी हो, वह उसका जनक था—जन्मदाता था···

जरासंध : रणभूमि में कौन पिता और कौन पुत्र ? कालयवन इतना भीरु कैसे हो गया ? यही है क्या वह बर्बर देश का वीर !

शाल्वराज : नहीं मगधेश ! कालयवन भीरु न था। एक क्षण-भर के लिए ही वह पीछे हटा था। पर तुरन्त ही उसने धनुष हाथ में ले लिया। धनुष पर बाण चढ़ाकर प्रत्यंचा खींची और बाण छोड़ ही रहा था कि···(रुक जाता है।)

जरासंध : फिर क्या हुआ ? क्या तुम भी घबरा गये ? शाल्वराज ?

शाल्वराज : नहीं मगधेश, उस समय मैं घबराया नहीं था। कालयवन के हाथ का बाण—शिवनामांकित वह बाण—यदि छूट जाता तो पृथ्वी पर जहाँ-जहाँ भी यादव होते, उन सबका नाश हो जाता···

जरासंध : फिर वह बाण क्यों नहीं छूटा ?

शाल्वराज : अब वही कह रहा हूँ आप से। गर्ग मुनि के सामने जाकर खड़े होते ही एक क्षण के लिए कालयवन पीछे हटा। और ज्योंही उसने धनुष पर बाण रखकर प्रत्यंचा खींची त्योंही गर्ग मुनि आगे बढ़े और अपनी छाती खोलकर बोले—'मेरे पुत्र, यदि यादवों का नाश करना है तो तेरा बाण यादवों के गुरु के हृदय को भेद कर ही उस पार जाना चाहिए···'

रुक्मी : और अपने बाप के मुँह से निकले उन शब्दों को सुनकर, कालयवन ने अपना बाण पीछे खींच लिया, यही हुआ न ?

शाल्वराज : नहीं, उसने अपना बाण पीछे नहीं खींचा—प्रत्यंचा ढीली नहीं की। फिर भी क्षण-भर के लिए

वह रुका और बोला,—'रणभूमि में जो नाते-रिश्ते का ध्यान करता है, वह वीर नहीं। यादवों के साथ यादवों के गुरु का भी नाश होगा।' यह सुनकर गर्ग मुनि बोले—'तो फिर छोड़ दे वह बाण। मूर्ख, शङ्कर का वरदान यादवों के नाश के लिए है— यादवों के गुरु के नाश के लिए नहीं। यदि यादवों के गुरु पर बाण छोड़ेगा—यदि पितृ-हत्या को उद्यत होगा तो तू इसी क्षण भस्म हो जायगा···

जरासंध : और उसने वह बाण छोड़ दिया···

शाल्वराज : हाँ, उसने वह बाण छोड़ा और उसे पितृ-हत्या का प्रायश्चित मिल गया।

जरासंध : क्या गर्गाचार्य के प्राण ले लिये उसने ?

शाल्वराज : नहीं मगधेश, कालयवन का वह बाण गर्गाचार्य के हृदय से लगते ही उलट कर पीछे लौटा (थोड़ी देर रुककर) उलट कर कालयवन के हृदय को भेद कर भूमि में विलुप्त हो गया। और कालयवन का भस्मीभूत शरीर···(गद्‌गद् होकर रुक जाता है।) हमारे सारे षड्यन्त्र पर पानी फिर गया।

जरासंध : मेरे षड्यन्त्र पर पानी फिर गया ! अन्त में यादवों ने मुझे पराजित कर दिया। कालयवन के उस अमोघ बाण ने कालयवन को नहीं बल्कि इस जरासंध को भेद दिया। इस संसार में कहीं भी मुँह दिखाने के लिए इस मगधेश को अब स्थान नहीं रहा।

रुक्मी : पर यह मथुरा तो अब हमारी हो गयी है ?

जरासंध : *मथुरा को लेकर क्या हम चाटें ? इस वीरान भूमि को लेकर हम क्या करेंगे ? मुझे मथुरा की चाह न थी···मुझे तो कृष्ण से बदला लेना था। नहीं-नहीं शाल्वराज, अब तो जीने की भी मुझे इच्छा नहीं रही। कृष्ण की जीत हुई ! कृष्ण विजयी हुआ। जरासंध पीछे हट गया—जरासंध ने मुँहकी खायी—जरासंध का मुँह काला हो गया ! धिक्कार—धिक्कार है इस जरासंध को !!* (जाता है।)

[शाल्वराज और रुक्मी चिल्लाते हैं—'ठहरिये मगधेश, ठहरिये' भीतर से जरासंध चिल्लाता है—'मगधेश का अवतार समाप्त' हो गया। मगधेश मर गया। मगधेश धूल में मिल गया !' दृश्य बदलता है। सोने की द्वारका दिखायी देती है। भीतर से नागरिक चिल्लाते हैं—'कालयवन मर गया—जलकर भस्म हो गया—मगधेश का मुँह काला हो गया—यादवाधीश कृष्ण की जय !—]

(दूसरी ओर से सुनीता चिल्लाती हुई आती है।)

सुनीता : *मगधेश भाग गया—अपना सा-मुँह लेकर भाग गया। शाल्वराज चला गया—रुक्मी भी भाग गया—यादवों के बैरियों का नाश हो गया !*

[सुनीता आनन्दोन्माद में नाचती और गाती हुई जाती है। इसी समय दृश्य बदलता है। स्थान—द्वारका। बीच में एक ऊँचा सिंहासन है। दोनों ओर आसन है। एक ओर से सुनीता चिल्लाती हुई प्रवेश करती है]

सुनीता : *कालयवन मर गया—जल कर भस्म हो गया—मगधेश का मुँह काला हो गया। श्रीकृष्ण विजयी हुए—यादवाधीश कृष्ण की जय…*

(एक ओर से रेवती और दूसरी ओर से अश्विनी प्रवेश करती हैं।)

रेवती : *कौन ? सुनीता ?* (सुनीता वही वाक्य चिल्लाती है) *तू इस प्रकार क्यों चिल्ला रही है ?*

अश्विनी : *सच ! सुनीता ही तो है। तुमसे किसने कहा कि कालयवन भस्म हो गया। कब आयी तू ? कहाँ से आयी ? कैसे आयी ?*

सुनीता : *मैं चली आयी इसी तरह उड़ती हुई। तुम तो मुझे नहीं लायीं।*

रेवती : *क्या वह बात हमारे बस की थी ? जिन्हें लाना चाहिए था वे नहीं लाये ! क्या हमारा कोई अधिकार चलता था वहाँ ? पर तू यह क्या चिल्ला रही है ?*

सुनीता : *क्यों, क्या सुनती नहीं ? कलयवन मर गया—जल कर भस्म हो गया—जरासंध का मुँह काला हो गया…*

अश्विनी : *किसने कहा तुझसे ?*

सुनीता : *जरासंध का काला मुँह मैं अपनी आँखों देख आयी। अपना माथा ठोंकता, हाय-हाय करता हुआ जरासंध चला गया। आखिर मुँह काला हो ही गया मुए का। मैंने अपनी आँखों देखा। मथुरा के*

सिंहासन पर बैठने आया था ! लेकिन जब उसे पता चला···(रुक जाती है ।)

रती : क्या पता चला ?

नीता : मैं क्यों बताऊँ ? तुम्हें स्वयं मालूम हो जायगा ।

शिवनी : है तो दासी पर निगोड़ी का घमण्ड तो देखो ! हमें बना रही है ।

रती : नहीं जी ! कितने आनन्द से चिल्लाती हुई आ रही थी वह ! यह मालूम होने पर कि कालयवन मर गया, आनन्द से कौन विह्वल नहीं हो उठेगा ? क्या हुआ री !

शिवनी : क्या हुआ री ! ठीक से सब बता न कि क्या हुआ ?

नीता : तुम्हें अभी तक मालूम तो नहीं हुआ न ? तुम्हें वह मालूम भी न होना चाहिए । तुमने मुझे मथुरा में ही छोड़ दिया था, इसीलिए सबसे पहले वह मुझे मालूम हुआ । कृष्ण के पहले मुझे मालूम हुआ—बलराम के पहले मुझे मालूम हुआ—तुम सब यादवों के पहले वह मुझे मालूम हुआ। कुण्डिन-पुर की जो हूँ न ? रुक्मिणी की प्रिय दासी हूँ न ? इसलिए सबसे पहले मुझे मालूम हुआ ?

रती : पर तुझे आखिर क्या मालूम हुआ—कुछ बतायेगी भी । मैं बड़ी अधीर हो रही हूँ । कहीं से भी कोई समाचार नहीं आ रहा है । मथुरा से लाकर हमें यहाँ द्वारका में पटक दिया । वहाँ क्या हुआ, कौन जाने ?

सुनीता : *कालयवन भस्म हो गया।*

अश्विनी : *किसने भस्म किया उसे ?*

सुनीता : *उसने अपने आप को ही भस्म कर डाला।*

अश्विनी : *उसने अपने आप को ही भस्म कर डाला ! ऐसा कभी हो सकता है ? किसकी चिता पर सती हो गया कालयवन ?*

गर्ग मुनि : (प्रवेश करके) *अपनी ही चिता पर कालयवन ने अपनी बलि दे दी।* (तीनों मुनि के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करती हैं।) *सौभाग्यवती भव ! अन्त में श्रीकृष्ण की विजय हुई।*

सुनीता : *नहीं देवी ! विजय हुई इनकी···यादवों के कुल-गुरु की।*

गर्ग मुनि : *नहीं बेटियो, विजय हुई श्रीकृष्ण की। कहाँ है श्रीकृष्ण ? कहाँ है बलराम ?*

रेवती : *क्या हो गया है कौन जाने ? मैं तो बिल्कुल घबरा गयी हूँ। कौन कहाँ है इसका बिल्कुल पता ही नहीं लगता। विश्वकर्मा सारी मथुरा नगरी को लाकर यहाँ रख गया। मानों सब के घर भी मथुरा से उठाकर वह यहाँ ले आया है ! यह द्वारकापुरी सोने की हो गयी है। इस सोने की नगरी में यह सुनीता एक स्वर्ण-समाचार ले आयी है···*

गर्ग मुनि : *इसने मेरे सामने हठ ही पकड़ लिया था कि यह समाचार सबसे पहले मैं ही जाकर सुनाऊँगी। मैं ही*

उसे यहाँ ले आया। मथुरा में इसने यादवों का बड़ा पक्ष लिया…

सुनीता : आप को आप की तपस्या की शपथ है मुनिराज! आप उस विषय में कुछ भी न कहें।

गर्ग मुनि : कहाँ चल दिये हैं ये दोनों भाई?

अश्विनी : बलराम दादा तो हमारे साथ आये हैं। परन्तु कृष्ण कहाँ चला गया, इसका किसी को भी पता नहीं।

गर्ग मुनि : कहाँ गया वह—कृष्ण! यह सोने की द्वारका सागर में जिसने स्थापित की, वह मेरा प्यारा कृष्ण…

अश्विनी : देखिये, वह आ गया।

(कृष्ण प्रवेश करके गर्ग मुनि के चरणों को दृढ़ता से पकड़ लेता है। मुनिराज उसे उठाते हैं, गद्‌गद् होते हैं और हृदय से लगा लेते हैं।)

कृष्ण : मेरे लिए आपने यह कैसी अग्नि-परीक्षा दे दी गुरुवर!

गर्ग मुनि : अब उस विषय में कुछ न कहो, कृष्ण!

कृष्ण : प्रत्यक्ष अपने पुत्र का संहार…

गर्ग मुनि : किसने किया?

कृष्ण : उसने स्वयं अपना संहार कर डाला, यह सच है। पर यह विलक्षण कार्य आप ही ने तो किया है।

गर्ग मुनि : उसने अविवेक का फल पाया। कृष्ण, मेरे प्रिय शिष्य, जो जलकर भस्म हुआ, वह कालयवन नहीं; जरासंध का मूर्तिमान अहङ्कार ही कालयवन के रूप

में भस्मीभूत हुआ है। यादव निर्विघ्न हो गये। उग्रसेन का सिंहासन निष्कंटक हो गया।

अश्विनी : क्या तुम वहाँ थे कृष्ण ?

कृष्ण : यादवों के रक्षार्थ जब स्वयं गुरुदेव आत्म-बलिदान के लिए आगे बढ़े तब मैं पीछे कैसे रह जाता ? यदि वैसा कोई प्रसङ्ग ही जाता तो गुरुदेव की रक्षा के लिए मैं तुरन्त आगे बढ़ता। परन्तु, अंत में आचार्य ने ही हमारी रक्षा की।

रेवती : आचार्य ने ही रक्षा की, इसका क्या अर्थ है लाला ! उन्होंने क्या किया ?

गर्ग मुनि : अब उस विषय में कुछ न कहो कृष्ण ! उसके उल्लेख की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं। रेवती ! अश्विनी ! अब विजयी वीरों की आरती उतारो।

सुनीता : पहले आरती मैं उतारूँगी।

अश्विनी : किसकी ?

रेवती : यह भी क्या कोई पूछने की बात है ? लाला की।

कृष्ण : नहीं भाभी, यह विजय दादा की हुई है—द्वारकाधीश बलराम महाराज की।

सुनीता : विजय किसी की भी क्यों न हो, पर पहले आरती मैं उतारूँगी। मैं यानी रुक्मिणी देवी—रुक्मिणी देवी के नाम की पहली आरती मैं उतारूँगी।

अश्विनी : किसकी ?

सुनीता : दोनों भाइयों की। दोनों को अपने सामने खड़ा

करूँगी और फिर ऐसी आरती उतारूँगी। (दोनों हाथों से आरती उतारने का अभिनय करती है)

रेवती : *अच्छा, अच्छा ! तेरी ही कामना पूरी हो जाने दे। अब चलो।* (तीनों जाती हैं।)

कृष्ण : *अब बड़ा संकट उपस्थित हो गया है ।*

गर्ग मुनि : *निष्कंटक हुए यादवों पर अब और कौन-सा संकट आ गया !*

कृष्ण : *द्वारका के राज्याभिषेक का।*

गर्ग मुनि : (कृष्ण को निकट खींचकर हृदय से लगाते हुए) *समझा, मैं जान गया कृष्ण ! तुम्हारे अन्तरतम की बात मुझे ज्ञात हो गयी। मैं यहाँ हूँ न ! इस सङ्कट से तुम्हें मुक्त कर देने का दायित्व भी मैं लेता हूँ।*

(बलराम प्रवेश करता है और गर्ग मुनि के चरणों पर गिर कर सिसक-सिसक कर रोने लगता है।)

बलराम : *क्षमा कीजिए गुरुदेव ! मुझे क्षमा कर दीजिए। घोर अपराधी हूँ मैं। अपने गुरुदेव पर मैंने व्यर्थ ही सन्देह किया। मैं आप का एक अज्ञानी बालक हूँ। मेरे अपराध क्षमा कर दीजिए आचार्य !*

गर्ग मुनि : *उठो बलराम, मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया। पर क्षमा भी कैसी ? तुम्हारा अपराध ही क्या है ? जरासंध ने षड्यन्त्र ही ऐसा रचा था कि मुझ पर सन्देह होना अवश्यंभावी था। सारे भारतवर्ष पर जरासंध जो विपत्ति ले आया था, भगवान शङ्कर की कृपा से वह टल गयी।*

बलराम : *शङ्कर जी की कृपा से नहीं—आप की कृपा से। यादवों की रक्षा के लिए, शत्रु के बाण के सामने अपनी छाती खोलकर खड़े हो जाने वाले अपने गुरु जी को भूल कर मैं और किस ईश्वर का आभार मानूँ? ईश्वर के ईश्वर हैं आप। हे यादवों के रक्षक, आप के अलौकिक आत्म-त्याग से मथुरा की ही नहीं सारे भारत की रक्षा हुई है।*

गर्ग मुनि : *पागल हो तुम, बलराम! यह सारा नाटक है श्रीकृष्ण का। परदे की ओट में रह कर, सूत्रधार की तरह यह कृष्ण हम सब लोगों से नाटक करा रहा है।*

बलराम : (कृष्ण को हृदय से लगाकर) *सच है गुरुदेव! मेरे इस कृष्ण की लीलाओं की थाँह कोई नहीं पा सकता।*

कृष्ण : *देखिए दादा, मेरी इस प्रकार व्यर्थ की प्रशंसा न करें; नहीं तो मैं…*

बलराम : *क्या करेगा?*

कृष्ण : *आपको ऐसे चक्कर में लाऊँगा कि…*

गर्ग मुनि : *हाँ, ऐसा होगा अवश्य!*

बलराम : *क्या आप भी जानते हैं इसका नया षड्यन्त्र!*

गर्ग मुनि : *इसमें षड्यन्त्र की क्या बात है—सब बातें सीधी-सीधी होनी हैं। पर ठहरो। यह देखो, द्वारका की देवियाँ विजयी वीरों की आरती उतारने आ रही हैं।*

(रेवती, अश्विनी और सबके आगे सुनीता गाती हुई आरती लेकर आती हैं। सुनीता कृष्ण के सामने आरती

उतारने जाती है। कृष्ण धीरे से आँखें मिचका कर गर्ग मुनि की आरती उतारने का संकेत करते हैं। वह गर्ग मुनि की आरती उतारने लगती है तब वे उन तीनों को बलराम की ओर अँगुली दिखाकर संकेत करते हैं। वे तीनों जाकर बलराम की आरती उतारने लगती हैं, उस समय वह अस्वस्थ होकर पीछे हटता है।)

बलराम : *यह क्या हो रहा है ? मेरी आरती क्यों उतारी जा रही है ? क्या किया है मैंने ? यदि स्त्रियाँ भाग कर आये हुए वीरों की आरतियाँ उतारने लगें, तो सारे क्षत्रियों की नीति ही बदल जायेगी। यह सम्मान गुरु जी का है...*

गर्ग मुनि : *नहीं—श्रीकृष्ण का।*

कृष्ण : *नहीं—यह सम्मान आचार्य का ही है।*

गर्ग मुनि : *नहीं रे कृष्ण, यह सम्मान बलराम का है। इस सर्वश्रेष्ठ यादव का...*

कृष्ण : *ठहरो, ठहरो—यह क्या भाभी ! आरती आप के हाथ में ? तुम्हारी बुद्धि कहाँ चरने चली गयी है, अश्विनी ? तुम्हें इनकी आरती उतारना है—इन्हें नहीं।*

बलराम : *यह क्या हो रहा है, कृष्ण ! क्या तुम्हारा विचार मुझे पागल कर देने का है ?* (देखकर) *ये कौन ? कैशिकराज ?*

(कैशिक, भीष्मक और दंतवक्त्र प्रवेश करते हैं और पहले गर्ग मुनि के चरण छूकर कृष्ण और बलराम का आलिंगन करते हैं !)

कैशिक : *गर्ग मुनि के आशीर्वाद से शत्रु का नाश हो गया। विजयी वीरों का स्वागत करने में मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है।*

बलराम : *यह आप ही की कृपा है। आप ही ने इस विजय का सूत्रपात किया है। इस तरह देखती क्यों हो? कैशिकराज की आरती उतारो।*

कैशिक : *हाँ, ठहरो, ठहरो। मेरी आरती क्यों उतारी जाय?*

(तीनों आरती लिये कैशिकराज के सामने आती हैं।)

गर्ग मुनि : *कृष्ण का जो पहला राज्याभिषेक किया सो आप ही ने···*

कृष्ण : *मैं किसी का राज्य नहीं चाहता···*

भीष्मक : *हाँ, विदर्भ के राज्यमुकुट को कृष्ण ने ज्यों-का-त्यों लौटा दिया। धन्य है श्रीकृष्ण!*

दंतवक्त्र : *और अब यह सोने की द्वारका कृष्ण ने बसा दी।*

रेवती : *इसीलिए मैं लाला की आरती उतारती हूँ।*

कृष्ण : *दादा के यहाँ रहते हुए?*

अश्विनी : *तो फिर हम अब आरती उतारें किसकी? कब से खड़ी हैं हम सब यहाँ? क्यों इस तरह तंग कर रहे हो हमें? अब आप ही कुछ बताइए गुरु जी!*

गर्ग मुनि : (बलराम की ओर अँगुली दिखाकर) *इसकी आरती उतारो।*

बलराम : *मेरी! मेरी क्यों भला?*

कृष्ण : *यदि द्वारका के अधिपति की आरती न उतारी जाय तो फिर किसकी उतारी जाय ?*

बलराम : *कौन है द्वारका का अधिपति ? मेरा क्या सम्बन्ध है इस द्वारका से ? इस नगरी को बसाने की कल्पना तेरी थी। तू विश्वकर्मा को ले आया। सारी मथुरा को यहाँ ले आने का सारा प्रयास तेरा—और तू कहता है···*

कृष्ण : *मैं मानता हूँ कि इस नगरी का शिल्पकार मैं हूँ। अब आप ही बतायें कैशिकराज, यदि कोई शिल्पी घर का नक्शा खींचता है, कारीगरों से घर बनवा देता है, तो क्या वह शिल्पी उस घर का स्वामी हो जाता है ?*

कैशिक : *कृष्ण ठीक कहता है। शिल्पकार घर बनाता है स्वामी के लिए···*

गर्ग मुनि : *और इस नगरी का स्वामी है बलराम।*

बलराम : *आप सब लोगों का यह एक षड्यंत्र मालूम होता है। द्वारका का स्वामी मैं कैसे हो सकता हूँ ?*

कैशिक : *सर्वश्रेष्ठ यादव, तुम्हीं जो हो न बलराम !*

बलराम : *हाँ, पर मैंने कहाँ कहा था कि इस नगरी का निर्माण कर।*

कृष्ण : *राज्य-शासन में ऐसी बातें कही नहीं जातीं, दादा ! अधिपति के मन की बात जान कर, उसकी आज्ञा के पूर्व ही जो काम संपन्न कर देता है; वही सच्चा*

निष्ठावान सेवक है। ऐसे ही निष्ठावान सेवक का काम मैंने किया है। देखती क्या हो, अश्विनी?...

बलराम : नहीं-नहीं...

कृष्ण : नहीं-नहीं का क्या अर्थ? अश्विनी, भाभी के हाथ से आरती ले लो।

रेवती : नहीं लाला, तुम्हारी आरती उतारे बिना मैं और किसी की आरती नहीं उतारूँगी।

बलराम : नहीं, पहले गुरुजी की आरती उतारो।

गर्ग मुनि : नहीं, पहले कैशिकराज की आरती उतारो। जरा-संध पर पहला प्रहार आप की कृपा से ही हुआ...

कैशिक : नहीं मुनिराज, वह कल्पना आप की थी।

अश्विनी : आखिर यह सब हो क्या रहा है? कुछ निर्णय तो करो। तुम पुरुषों का यही होता है। सभी विद्वान जो हो न! कभी एक मत नहीं होओगे। चल री सुनीता—तुम लोग हटो..

सुनीता : मैं कृष्ण की आरती उतारूँगी। रुक्मिणी देवी की दासी जो हूँ मैं...

अश्विनी : वह उतारना अब विवाह के समय।

भीष्मक : हाँ, विवाह के समय—स्वयंवर भंग तो हो ही गया। अब मेरी रुक्मिणी का विवाह होगा—श्रीकृष्ण से विवाह होगा।

कृष्ण : दादा का राज्याभिषेक होने के बाद...

बलराम : मेरा राज्याभिषेक? कैसा राज्याभिषेक?

कृष्ण : द्वारका नगरी का राज्याभिषेक···

बलराम : नहीं, यह नगरी श्रीकृष्ण की है। द्वारका का राजा श्रीकृष्ण है।

कृष्ण : नहीं, द्वारका के राजा यादवाधिंपति बलराम महाराज हैं !

बलराम : नहीं, मैं किसी के राज्य का अपहरण नहीं करना चाहता। क्या अधिकार है मेरा इस द्वारका पर ? क्यों बैठूँ मैं इसके सिंहासन पर ? कैशिकराज, आप हमारे गुरुजन हैं। आप की क्या सम्मति है ?

कैशिक : (गर्ग मुनि से) आप की क्या सम्मति है, यादव-कुलगुरो !

गर्ग मुनि : मैं पहले ही कह चुका हूँ।

कृष्ण : लीजिए, सुन लीजिए, दादा !

बलराम : नहीं, मैं किसी की भी नहीं सुनूँगा। मुझे यह बात जँचती ही नहीं। यह कृष्ण की नगरी है। उसे इस नगरी का राजा होना चाहिए। कृष्ण की यह बहुत बुरी आदत है। हर बार इसी तरह वह मुझे आगे कर देता है। (कृष्ण हँसता है।) हँसता क्या है ? नगरी तो बसायी तू ने—सारा षड्यन्त्र रचा तू ने, मथुरा की रक्षा की तू ने और तेरे इस सारे श्रेय को मैं छीनूँ ?

कृष्ण : ऐसा क्यों कह रहे हैं, दादा ! आप यादवों के अधिपति हैं। यह द्वारका यादवों की है। यादवों की द्वारका का आधिपत्य यदि आप को न दें, तो फिर

किसे दें ? ठहरिये, मैं क्या कह रहा हूँ, वह पूरा सुन लीजिए। मैं आपकी आज्ञा की याचना करता हूँ, गुरुदेव ! गुरुजन के नाते कैशिकराज की, भीष्मक-राज की और ऐन सङ्कट के समय हमें सावधान कर देने वाले दन्तवक्त्र की। इसका निर्णय अब आप सब लोगों के हाथ में है। मेरी बात पहले सुन लीजिए। मैं एक सेवक हूँ। गोकुल में सेवा का पाठ पढ़ते-पढ़ते ही मेरा बचपन बीता है। सेवा करने में ही मुझे सच्चा सुख मिलता है। सत्ता के लोभ से जो सेवा करने के लिए अग्रसर होता है, वह सच्चा सेवक नहीं। ऐसे सेवा-व्रत की प्रस्थापना के लिए मुझे परम्परा पर आघात करना है—संसार को नयी दृष्टि देनी है—नये तत्त्वज्ञान का प्रसार करना है। जिसे लोकसंग्रह करना है—सामान्य जनता की सेवा करने के लिए लोकशिक्षा का बीड़ा उठाना है, उसे अधि-कार का मोह त्यागना होगा। यदि मैंने यह राज्यपद स्वीकार कर लिया तो मैं जनता-जनार्दन से दूर हो जाऊँगा। और मुझे अपने भोले-भाले साथियों से सदा के लिए वंचित हो जाना पड़ेगा···

बलराम : और क्या मैं नहीं हो जाऊँगा उनसे वंचित ? क्या तू ही एक उनका बड़ा प्यारा है ?

कृष्ण : ऐसी तुलना क्यों करते हो, दादा ? वे सब जिस तरह मेरे हैं, उसी तरह आपके भी हैं। मेरे साथी हैं, और आप के प्रजाजन हैं। मैं भी आप का ही एक प्रजाजन हूँ।

बलराम : नहीं, तू मेरा भाई है।

कृष्ण : भले ही भाई हूँ, फिर भी मैं आपका प्रजाजन हूँ। आप यादवों के नेता हैं। आप को आज्ञा देना है, मुझे उसका पालन करना है। मैं आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ। आप की ही आज्ञा से मैं संसार की सेवा करूँगा। जो यह चाहता है कि संसार को कुछ सिखाऊँ, संसार को कार्य में जुटाऊँ, संसार रूपी बिगड़ी हुई गृहस्थी को सुचारु रूप से चलाने के लिए उसे नयी मोड़ें दूँ, तो उसे साधारण जन-जीवन में घुल-मिल जाना चाहिए। जो संसार को सिखना चाहता है, उसके लिए अधिकार ग्रहण करना पाप है। और इसीलिए मैं राज्यपद नहीं चाहता। मुझ पर इतना उपकार कीजिए दादा। द्वारका का सिंहासन स्वीकार कीजिए और मुझे जनता की सेवा के लिए छोड़ दीजिए। बस मेरी इतनी ही विनती है आप से। (बलराम के चरण पर मस्तक रख देता है।)

बलराम : (गद्‌गद् होकर उसे उठाते हुए) उठ कृष्ण ! मुझे इस प्रकार लज्जित न कर। तेरी माँगें मैंने स्वीकार कीं। तूने माँगा और मैंने नहीं दिया, ऐसा कभी हुआ है ? देखा गुरुजी, देखा कैशिकराज, मेरा कृष्ण कितना महान है। सदा इसी तरह मुझे हराता रहता है। (कृष्ण हँसता है।) हँसता क्यों है ?

कृष्ण : यदि इस समय न हँसूं तो फिर कब हँसूंगा दादा ! कितने बड़े सङ्कट से आप ने मुझे बचा लिया।

अश्विनी : कैसा सङ्कट ? क्या राज्य-शासन चलाने का ? हाँ !

अच्छा, बिल्कुल साफ-साफ हाँ कह रहे हो? क्या शासन चलाने से तुम्हें अपनी बैलगाड़ी चलाना ही अच्छा लगता है? क्यों?

कृष्ण : केवल अपनी गाड़ियाँ ही नहीं, अपने मित्रों की, अपने साथियों की। द्वारका के इस छोटे से राज्य की अपेक्षा कितने ही बड़े साम्राज्य की उथल-पुथल करनी है मुझे! सारे संसार की गाड़ी को सुचारु रूप से चलाना है मुझे। समझीं? कौशिकराज, आप हमारे गुरुजन हैं। क्षण-भर के लिए जिस तरह आपने मुझे सिंहासन पर बिठाया था, उसी तरह अब द्वारका के सिंहासन पर हमारे दादा का राजतिलक अपने ही हाथ से होने दीजिए। गुरु जी का आर्शीर्वाद तो हम पर सदा से है ही। दादा, गुरुजी को प्रणाम करके सिंहासन स्वीकार कीजिए। भाभी; दीजिए यह आरती मेरे हाथ में···

(कौशिक और भीष्मक बलराम और रेवती को सिंहासन पर बैठाते हैं। कृष्ण उनकी आरती उतारता है। सुनीता कृष्ण की आरती उतारती है और तीनों सिंहासन के आगे खड़े होकर बलराम और रेवती की मिलकर आरती उतारते हैं।)

कौशिक : अब सब लोग जय बोलो—द्वारकाधीश बलराम महाराज की जय!

(पर्दा गिरता है)